संघम शरणम गच्छामि

क्योंकि बच्चों को
बड़ा होने में देर नहीं लगती!

एलआईसी का

नया **चिल्ड्रन्स**

मनी बैक प्लान

UIN: 512N296V01 PLAN NO.: 832

पाइए आकर्षक भुगतान
बच्चे के विकास के महत्वपूर्ण पड़ावों पर.

मुख्य विशेषताएँ :

- **आयु संबंधी पात्रता :** 0–12 वर्ष. **परिपक्वता आयु :** 25 वर्ष
- **न्यूनतम बीमा राशि :** ₹ 1 लाख. **अधिकतम बीमा राशि :** कोई ऊपरी सीमा नहीं
- **मनी बैक किस्तें :** 18, 20 और 22 वर्ष की उम्र पूरी होने पर मूल बीमा राशि का 20%
- **परिपक्वता लाभ :** मूल बीमा राशि का शेष 40% और बोनस
- **प्रीमियम वेवर राइडर लाभ :** विकल्प उपलब्ध
- **पॉलिसी की अवधि के दौरान मनी बैक किस्तें विलंबित करने का विकल्प उपलब्ध**

अपने एजेंट/शाखा से संपर्क करें या
हमारी वेबसाइट www.licindia.in पर जाएँ या
SMS करें आपके शहर का नाम 56767474 पर

भ्रामक फोन कॉल्स तथा फर्जी / धोखाधड़ी वाले ऑफर्स से सावधान आईआरडीएआई सर्वसाधारण को सूचित करता है • **आईआरडीएआई या इसके अधिकारी, बीमा विक्रय या वित्तीय उत्पाद अथवा प्रीमियम निवेश संबंधी गतिविधियों से संबंध नहीं रखते. • आईआरडीएआई किसी प्रकार के बोनस की घोषणा नहीं करता.** ऐसे फोन आने पर कॉल विवरण तथा फोन नंबर की रिपोर्ट तुरंत पुलिस में दर्ज करवायें.

Follow us :   LIC India Forever

IRDAI Regn No. : 512

LIC/02/14-15/60/HIN

बीमा आग्रह की विषय-वस्तु है.
बिक्री समापन से पूर्व अधिक जानकारी या जोखिम घटकों,
नियम और शर्तों के लिए बिक्री पुस्तिका को ध्यानपूर्वक पढ़े.

ज़िन्दगी के साथ भी, ज़िन्दगी के बाद भी.
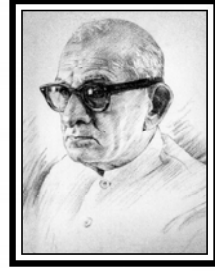
ब्राह्मण स्वभाव

शुद्ध अर्थात ब्राह्मण स्वभाव वाले मनुष्य में देव, द्विज, ज्ञानी और विशेषकर अपने गुरू के प्रति पूज्य भाव होता है. विद्वान और मुमुक्षु के प्रति नम्रता का आचरण, जो सच्ची संस्कारिता का वास्तविक लक्षण है– उसमें होता है. वह बोलता है, तब सत्य बोलता है, किंतु कठोरता से नहीं बोलता. वह मन में कुविचार को स्थान नहीं देता और स्वभाव से शांत और स्वस्थ होता है. उसकी वाणी और व्यवहार में संयम होता है. दृष्टि में सर्वात्मभाव होता है.

उसे अपने प्रत्येक कर्म को सम्पूर्ण बनाने की इच्छा होती है, अतएव वह कर्म के फल के प्रति आसक्ति नहीं रखता. अपने हिस्से में आया हुआ नियत कर्म प्रतिकूल होने पर भी वह अटल रहकर अपना काम करता रहता है. कार्य और अकार्य के बीच का भेद वह समझ सकता है. कड़वे, खट्टे, नमकीन, गरम, तीखे और रुक्ष का स्वाद वह पहचानता है. इसीलिए उसे ज्ञान होता है कि वह किस काम को करने योग्य है. इसी प्रकार, अपने स्वभाव के कारण अपने ऊपर आरूढ़ मर्यादाओं का भान भी उसे होता है. अपने समस्त कर्त्तव्यों की जानकारी उसे होती है और उनका पालन करने के लिए वह अपना जीवन अर्पित कर देता है.

(कुलपति के.एम. मुनशी भारतीय विद्या भवन के संस्थापक थे)

अध्यक्षीय

ब्रह्मांड की रचना

ब्रह्मांड की वास्तविकता क्या है? भगवान की अवधारणा का विश्लेषण करने से पहले इस सवाल का जवाब दिया जाना चाहिए. विज्ञान अभी भी उस मूल इकाई की खोज में है जो ब्रह्मांड का निर्माण करती है.

यदि यह मान लिया जाता है कि पृथ्वी, पर्यावरण, प्रकृति, जो जीवन के विकास के इतने अनुकूल हैं, ऐसे होने ही हैं, तो विभिन्न घटनाक्रमों की पेचीदगियां और उनके रहस्य सामने नहीं आ पाते. ब्रह्मांडीय बलों और प्रवृत्तियों का गहरा अध्ययन, अथक प्रयास ही मानवीय मस्तिष्क की सीमाओं से परिचित करा सकते हैं. इस तथ्य के बावजूद की वास्तविकता में मनुष्य ब्रह्म का अंश है, ज्ञान के वैश्विक स्रोत की तुलना में मानवीय सीमाओं को तभी समझा जा सकता है.

दुनिया के लगभग सभी देशों की प्राचीन पौराणिक कथाओं में, देवियों, देवताओं, मनुष्यों, जानवरों और यहां तक कि इस ब्रह्मांड की रचना की अलग-अलग कहानियां हैं.

इस ग्रह पर ऐसे अनगिनत जीव हैं जो जन्म और मृत्यु के चक्र से गुजरते हैं. अपनी ज़रूरतों को पूरा करते हुए कुछ समय के लिए अपना जीवन जीते हैं. यह तार्किक रूप से सिद्ध किया जा सकता है कि मनुष्य तर्क और बुद्धिमत्ता के स्तर पर अन्य सभी जीवित प्राणियों से उत्कृष्ट

है. यह आदिकाल से है और बौद्धिक क्षेत्र में मनुष्य की यह श्रेष्ठता इस ग्रह पर जीवनपर्यंत बनी रहेगी.

आध्यात्मिकता अदृश्य आत्मा की गतिशील गतिविधियों की घटना है जो चलती है, दबाव बढ़ाती और कम करती है, घूमती है, स्पंदित होती है. इस प्रकार अपने सम्बंधित क्षेत्रों के साथ आधारभूत उपादानों को जन्म देती है जिससे दृश्यमान ब्रह्मांड का निर्माण होता है. जोकि आत्मा के प्राथमिक जीव विकास सतह की माध्यमिक परिघटना है.

ब्रह्मांड में अकाश, उसकी चाल और परिणामी क्षेत्रों और बलों के अलावा कोई इकाई नहीं है. जिस तरह पानी के एक तालाब में, सतह पर थोड़ी सी भी हलचल पूरी सतह पर फैलने वाली तरंगों का निर्माण करती है, उसी तरह मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाली किंचित मात्र गतिविधि तरंगों की तरह पूरे ब्रह्मांड में फैल जाती है. इसका असर सभी जीवों के मस्तिष्क पर पड़ता है.

सुरेन्द्र लाल मेहता

(सुरेंद्रलाल जी. मेहता)

अध्यक्ष

भारतीय विद्या भवन

भवन्स
नवनीत

समय... साहित्य... संस्कृति...

68 वर्षों की समृद्ध परम्परा की अगली कड़ी

वर्ष : 5 अंक : 9 ● मई 2020

संस्थापक

कनैयालाल मुनशी u श्रीगोपाल नेवटिया

सम्पादक

विश्वनाथ सचदेव

सहायक सम्पादक

राधारमण त्रिपाठी

प्रसार - सहायक

आज़ाद आलम

सज्जा - **गौरी कानडे**

कार्यालय सहायक - **हंसमुख परमार**

सम्पादकीय कार्यालय

भारतीय विद्या भवन

क.मा. मुनशी मार्ग, चौपाटी, मुंबई 400007

फ़ोन : 022-23634462/ 1261/ 1554

फ़ैक्स : 022-23630058

प्रसार विभाग : 022-23514466/23530916

ई-मेल : navneet.hindi@gmail.com
bhavansnavneet@gmail.com

एक नज़र

आवरण-कथा

कथा

कविताएं

समाचार

'नवनीत' का हर अंक पठनीय तो होता ही है, संग्रहणीय भी है. अभी-अभी मार्च महीने का अंक पढ़कर रखा है. महिला दिवस के उपलक्ष्य में आपने '...और द्रौपदी' के अंतर्गत जिस तरह की सामग्री संजोयी है, वह सचमुच प्रशंसनीय है. राममनोहर लोहिया, श्रीभगवान सिंह, सुधा अरोड़ा और राजम पिल्लै के लेख कई-कई संदर्भों वाले हैं. अमृता प्रीतम को पढ़ना एक सुखद अनुभव होता है.

● कंचन श्रीवास्तव, मेरठ

नवनीत पत्रिका मुझे बहुत ही प्रिय है, और हर माह मुझे इसकी प्रतीक्षा रहती है. मार्च के अंक में प्रकाशित डॉ. श्रीमती कमल चतुर्वेदी की कहानी 'उत्सव-शेष' ने मुझे झकझोर कर रख दिया. अर्से बाद इतनी यथार्थ और समाज के वर्तमान को रेखांकित करती सत्य घटना सी घटित होती कहानी पढ़ कर ऐसा लगा कि कहानी के बाबूजी मेरे ही बाबूजी हैं. कहानी का एक-एक पात्र साकार सा हो उठा और मन अपार करुणा से भर उठा. क्या हमारा समाज ऐसी ही मन:स्थिति में जी रहा है, कि किसी के उपकारों को याद कर उसकी मृत्यु पर रोना भी संदेह, शंका और चरित्रहीनता के घेरे में आने लगा है? महिलाओं का एक महिला के प्रति ऐसा विकृत सोच? आश्चर्य होता है... क्या यही आधुनिकता है, क्या यही संवेदना और यही मृत्यु का शोक है? प्रसुप्त संवेदनाओं को जगाती ऐसी जीवंत कहानी के प्रकाशन हेतु बहुत धन्यवाद.

● श्रीमती विमल जोशी, इटारसी, म.प्र.

सम्पादकीय मन को छू लेने वाली है पंच वाक्य 'तेरा सुख' जब 'मेरा सुख' बन जाता है तभी वह सच्चा सुख कहलाता है. बसंत एक भावना है एक मानसिकता है, जब जीवन में उल्लास आता है, तब बसंत का आगमन होता है.

जिसने अपने को निष्काम भाव से समर्पित कर दिया है, बसंत उसे बांहों में उठा लेता है. हमारे अंदर की अच्छाइयों का उजागर होना, बसंत के आगमन का सूचक है. 'प्यार का हिसाब' (पृष्ठ 87) बहुत सटीक व शिक्षाप्रद है. 'प्यार में हिसाब' नहीं होता है हिसाब तो 'बनिया' या लेखा-जोखा करने वाला करता है. मछलीवाली अपनी सामान्य भाषा में 'जीवन दर्शन' से अवगत करा देती है.

'आयाम' में गिरीश पंकज का यह

विचार 'साहित्य हमें व्यक्ति से इंसान बनाने की तमीज सिखाता है' बहुत विद्वतापूर्ण कथन है. 'बोध कथा' में इच्छाओं की प्यास की कमज़ोरी जाहिर हुई है. इच्छाओं की प्यास अतृप्त ही रहती है. आवश्यकता पूरी की जा सकती है.

● **प्रो. के.डी. सोमानी, उज्जैन (म.प्र.)**

फरवरी का अंक वासंती उल्लास से समृद्ध नज़र आया. विचारों की विविध सरणियां भी मुझे दिखाई दीं. मेरे अनेक प्रिय लेखक इस अंक में हैं. किसके नाम लूं? सुरेश रितुपर्ण का लेख 'स्मृतियों की पुकार है वसंत' पढ़कर मन वासंती हो गया. कन्हैयालाल नंदन जी का लेख 'आना वसंत का दबे पांव' या श्रीराम परिहार का 'हे मेरे वसंत' लालित्य बोध से भरा हुआ था. गोपाल चतुर्वेदी सदाबहार हैं. गंगाप्रसाद विमल मेरे बड़े आदरणीय लेखक थे. उनकी बड़ी पुरानी रचना 'कहानियों के रफ नोट्स' पढ़कर मैं भी मधुर स्मृतियों में खो गया. मनमोहन सरल जी का लेख 'मर जाने के बाद भी कुछ खत्म नहीं होता' भीतर एक आस्था जगाता है. 'लेखक की आज़ादी' में ज्यां पाल सार्त्र नोबेल पुरस्कार को प्रकारांतर से बुर्जुआ पुरस्कार कहकर गम्भीर हस्तक्षेप करते हैं. दरअसल लेखक की सार्थक सर्जनशीलता ही अंततः उसका एक बड़ा पुरस्कार है. सुरेंद्रलाल मेहता जी ने एक बड़ी महत्वपूर्ण बात कही है कि 'भारत इतना समृद्ध और महत्वपूर्ण राष्ट्र है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती. उसे सही ढंग से समझना हमारे समय की महत्वपूर्ण ज़रूरतों में से एक है'. 'नवनीत' के लेख दरअसल भारत को समझने के लिए ही प्रेरित करते हैं.

● **गिरीश पंकज, रायपुर (छत्तीसगढ़)**

नवनीत के ग्राहक बनिए

प्रति अंक	- 30 रुपये	विशेष अंक (वार्षिक)	- 40 रुपये
एक वर्ष का शुल्क	- 300 रुपये	दो वर्ष का शुल्क	- 580 रुपये
तीन वर्ष का शुल्क	- 850 रुपये	पांच वर्ष का शुल्क	- 1400 रुपये
दस वर्ष का शुल्क	- 2800 रुपये	विदेशों में एक वर्ष के लिए	- 1500 रुपये (समुद्र मार्ग)
		विदेशों में एक वर्ष के लिए	- 2600 रुपये (हवाई मार्ग)

(कृपया चेक / डीडी **'भारतीय विद्या भवन'** के नाम से बनायें.)

इंटरनेट से नवनीत का चंदा भरने के लिए लॉग ऑन करें

http://www.bhavans.info/bookstore/navneet-hindi.php

मई 2020 ✦ भवन्स नवनीत ✦ 9

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। वेदो नित्यमधीयताम्।
वेदा: वयं व: शरणं प्रपन्ना:। वेदा ये न: परं धनम्।।

अद्वैत विद्याचार्य महाराजा साहेब

श्री गोविन्द दीक्षितर पुण्य स्मरण समिति (पंजीकृत)

'श्री गोविंद दीक्षिता घटिका स्थानम' 29-30, ईस्ट अयन स्ट्रीट, (प्रवेश योगासलाई मार्ग से) कुम्बकोणम्, तमिलनाडु-612001 भारत. टेली नं. (कार्यालय) (0435) 2425948, 2401789, पाठशाला: 2422866, 2401788, Email: rajavedapatasala@gmail.com
Website: www.rajavedapatasala.org

वेद और शास्त्र निहित धरोहर को प्राचीन पारम्परिक गुरुकुल प्रणाली द्वारा सुरक्षित रखने के लिये निवेदन

राज वेद काव्य पाठशाला, कुम्बकोणम् की स्थापना ई.स. 1542 में तीन नायक राजाओं के प्रधानमंत्री **संत अद्वैत विद्याचार्य महाराजा साहेब भगवान श्री गोविन्द दीक्षितर** ने की. यह तांजोर स्थित पवित्र कावेरी नदी के दक्षिणी तट पर स्थित है. जिसका उद्देश्य है वेदों और शास्त्रों का प्रचार-प्रसार. यह तमिलनाडु स्थित पूरे भारत वर्ष में एकमात्र पाठशाला है, जो बिना किसी रुकावट 471 वर्षों से कार्यरत है. यहां निर्धारित पाठ्यक्रम के तहत तीनों वेद-ऋग्, यजु (शुक्ल और कृष्ण) तथा सामवेद की शिक्षा एक ही संकुत के नीचे 8-12 वर्ष के बाल-विद्यार्थियों को दी जाती है. यहां 155 विद्यार्थियों को छह से दस वर्ष तक प्रशिक्षण दिया जाता है. आवास-निवास, खान-पान, यात्रा व शिक्षा की सुविधा आदि समिति अपनी ओर से मुफ्त में करती है. इन विद्यार्थिओं को पाठशाला के 14 वरिष्ठ अध्यापकों के सान्निध्य में वेद-शास्त्रों की शिक्षा दी जाती है. वैदिक शिक्षा की सफल समाप्ति पर उन्हें वेद व शास्त्रों की उच्चतर शिक्षा के लिए पाठशाला के विद्वान अध्यापकों द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है.

पाठशाला की इन सब गतिविधियों पर होने वाले बढ़ते व्यय के निरूपण हेतु कांची के कामकोटि मठ के श्री जयेंद्र सरस्वती स्वामिगल द्वारा दि. 21-6-2004 को नवनिर्मित पाठशाला भवन **श्री गोविंद दीक्षितर घंटिका स्थानम्** (13,500 वर्ग फीट) को वैदिक विद्यार्थियों हेतु समर्पित किया गया.

पाठशाला के बढ़ते हुए खर्च की समस्या कम करने हेतु निम्नलिखित योजनाओं के अंतर्गत अनुदान का स्वागत है, कृपया अपना फोन नं: (STD कोड के साथ) मोबाइल नम्बर/इ-मेल पूरा पत्ता व पिन कोड अवश्य लिखें.

योजना का नाम	अनुदान (आंशिक व्यय)	स्थाई अनुदान
वैदिक विद्यार्थी भोज (समाराधना)		
घरेलू भोजन	रु. 700/-	रु. 9000/-
विशेष समाराधना	रु. 2500/-	रु. 30,000/-
चावल और दाल हेतु - (75 किलोग्राम)	रु. 1600/-	रु. 20,000/-
वेद (शिक्षा एवं संक्षण हेतु) प्रति विद्यार्थी	रु. 12,000/- प्रतिवर्ष	रु. 1,50,000/-

अनुदान क्रास चेक, डी.डी. **'ए.वी.एम.एस.जी.डी.पी.एस. समिति'** के पक्ष में 'कुम्बकोणम्' पर देय होना चाहिए. पत्राचार हेतु उपरोक्त पते पर अध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष से सम्पर्क करें.

।।आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।।

दरवाज़ा तो खोलो

जाओ, जाकर दरवाज़ा खोल दो
हो सकता है
बाहर खड़ा हो कोई पेड़
या कोई जंगल
हो सकता है कोई बगीचा ही खड़ा हो
कोई जादुई शहर भी हो सकता है बाहर
जाओ, जाकर दरवाज़ा खोल दो...
बाहर यदि कोहरा जमा होगा
छटने का रास्ता मिल जायेगा उसे
जाओ, जाकर दरवाज़ा खोल दो

यदि सिर्फ अंधेरा ही बाहर है तब भी
सिर झुकाये खड़ी हो हवा, तब भी
और यदि कुछ भी न हो बाहर तब भी
जाओ, जाकर दरवाज़ा खोल दो
कम से कम
हवा का झोंका तो आर-पार होगा

सम्पादकीय

संघम् शरणम् गच्छामि

बुद्ध के दिये मंत्र 'संघम् शरणम् गच्छामि' और भागवत पुराण के संदेश 'संघे शक्ति युगे युगे' में क्या अंतर है, पता नहीं, लेकिन एक समानता अवश्य है– संघ या समूह की शक्ति की स्वीकार्यता और उद्घोषणा. एक व्यक्ति भी शक्तिवान हो सकता है, पर जब एक से एक जुड़ता है तो शक्ति दुगनी नहीं, ग्यारह गुनी हो जाती है. कल्पना की जा सकती है, यह समूह जब बड़ा हो जाता है, और बड़ा हो जाता है, तो शक्ति कितनी गुना हो जाती होगी. फिर जब इस बढ़ी हुई शक्ति का उपयोग बहुजन हिताय, और सर्वजन हिताय होगा तो, निश्चित है कल्याण की गंगा बहेगी ही. इसीलिए बुद्ध ने बुद्धम् शरणम् के बाद, संघम् शरणम् और फिर धम्मं शरणम् की बात कही. बुद्ध ने किस अभिप्राय से यह मंत्र दिया होगा, और उनके शिष्य आनंद तथा उनके साथियों ने इसका क्या आशय लिया होगा, यह महत्वपूर्ण है, पर उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण यह निहितार्थ है कि बुद्ध का अर्थ प्रबुद्ध शक्ति ही होता, प्रबुद्ध अर्थात जिसने सत्य को पा लिया है, संघ का अर्थ सत्य की खोज में लगा समूह होता है और धम्म उस सत्य का साकार होता है. अर्थात कुल मिलाकर सत्य की शरण में जाने की बात है. महात्मा गांधी ने इसी सत्य को ईश्वर कहा था.

लेकिन, सवाल ईश्वर की शरण जाने अथवा ईश्वर को पाने का नहीं है, सवाल उस व्यक्ति में ईश्वर के अंश को देखने का है, जिसे ईश्वर ने बनाया है. हम में से हर एक में निहित हैं यह अंश, इसीलिए हम एक दूसरे से जुड़े हुए हैं– और इसीलिए हम सबकी पीड़ा और सबकी खुशी साझी है. आवश्यकता इस

साझेपन को समझने और महसूस करने की है. यह महसूस करके ही हम जुड़ सकते हैं, अनेक से एक बन सकते हैं.

एक होने का यह अहसास ही हमें ताकतवर बनाता है. व्यक्ति और व्यक्ति का सहयोग ही सबके हित की कल्पना को साकार करता है. यह एक होना ही मतलब होता है संघ का. संघ का होने का यह भाव ही उस उदात्तता को अर्थ देता है, जिसे सामान्यत: सर्वजन हिताय के रूप में समझते हैं. इसलिए बुद्ध संघम् शरणम् गच्छामि की बात करते हैं. उनका यह संघ जागे हुए अथवा जागने का प्रयास करने वाले व्यक्तियों का समूह है. बुद्ध ने अपने लिए निर्वाण नहीं चाहा था, उन्होंने तो निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग बताया था. उनका मानना था, इस मार्ग पर चलकर सब जीवन के उद्देश्यों को पूरा करने की संकल्प-सिद्धि कर सकते हैं.

इस मार्ग को समझना महत्वपूर्ण है. पर यह समझना भी ज़रूरी है कि मार्ग की पहचान और उस पर चलने की क्षमता अर्जित करने के बाद भी एक और महत्वपूर्ण तथ्य है, जो हमेशा दृष्टि में रहना चाहिए. बुद्ध यदि जागरण का नाम है तो उनके बताये मार्ग पर चलने का प्रयास समर्पण की भावना के बिना सफल नहीं हो सकता. इसीलिए उन्होंने बुद्ध या संघ या धम्म की शरण जाने की बात कही– अर्थात अहम् का विगलन. यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति स्वयं को महत्वपूर्ण मानने की स्थिति से ऊपर उठकर स्वयं को समूह का, संघ का, हिस्सा माने. मान ले कि सबके कल्याण में ही उसका कल्याण निहित है. तभी जीवन में प्राप्ति का सच्चा सुख आयेगा, शांति आयेगी. बुद्धत्व इसी शांति की खोज के पूरा होने का नाम है. आइए, स्वयं को इस खोज की दिशा में आगे बढ़ने के योग्य बनायें.

आवरण-कथा

निर्वाण वाया संघम

● रमेश जोशी

कुछ हमारे चेतन-अवचेतन में होता है वह यथासमय प्रकट हो जाता है. सामान्य जीव मूर्ति के निकट जाते समय भी अपनी मांगों की लिस्ट जेब में डालकर ले जाता है वहीं यम द्वारा भटकाने के लिए अनेक प्रलोभन दिये जाने के बावजूद नचिकेता यम से सब सुख-साधन मांगने की बजाय आत्मज्ञान मांगता है. कोई भी प्रसंग आने पर तत्सम्बंधी कुछ समान या विरोधी प्रसंग स्मृति के तहखाने से उछलकर किसी गवाक्ष से झांकने लगते हैं.

बुद्ध की बात आते ही जाने कौन-कौन प्रकट हो गये मगर आश्चर्य कि सभी में कोई न कोई विचित्र समानता. राज्याभिषेक की योजना बनाते ही वनवास का विधान, लौटे तो सीता का त्याग और स्वयं की सरयू में समाधि. कृष्ण का कारागार में जन्म, अंधेरी रात में टोकरी में लेटकर उफनती यमुना पार कर गोकुल-गमन,

सबको बिलखता छोड़ मथुरा प्रस्थान, रणछोड़ बन दूरस्थ द्वारिका जाना, महाभारत के लिए इंद्रप्रस्थ-प्रस्थित फिर लीलाधारी का प्रभास पाटन में व्याध के तीर से आहत होकर परलोक गमन. महावीर का वस्त्र तक त्याग कर वन-वन भ्रमण. नानक का सच्चे सौदे के लिए भारत ही नहीं, मक्का-मदीना तक प्रवास. दयानंद का शिवलिंग पर रखे गुड़ खाते चूहे को देखकर ज्ञान के लिए घर छोड़कर समस्त भारत में भटकना. विवेकानंद का विश्व-भ्रमण. गुजरात के एक शर्मीले बालक का इंग्लैंड से अफ्रीका होते हुए भारत आगमन और फिर एक लकुटी-लंगोटी में भारत को खोजते-खोजते खो जाना. बुद्ध भी कहां इन सबसे भिन्न हैं?

बहुत पहले लक्ष्मी नारायण लाल का एक एकांकी पढ़ा था– यक्ष-प्रश्न.

यक्ष ने पूछा– वनवास क्या है?

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया– सबके बीच होना.

शायद 'सबके बीच होने के लिए' घर से निकलना, वनवास में जाना ज़रूरी है. क्या सूरज का कोई घर होता है? उसे तो जगत भर की रोशनी के लिए जलते और चलते जाना है. कोई भी घर में बैठकर भगवान कैसे बन सकता है? व्यष्टि और समष्टि का रहस्य खोजकर सामान्य जन के लिए आचरण का विधान करने का काम घर में बैठकर कैसे हो सकता है? ज्योतिषियों की द्विअर्थी भविष्यवाणी और पिता का मोहमय मन! कहीं पुत्र संन्यासी हो गया तो? सब भोगों की व्यवस्था होते हुए भी संन्यास. संन्यास माने कष्ट! मोहाविष्ट पिता सोच ही नहीं पाये कि सभी सुख-सुविधाओं के होते हुए भी क्या जीवन कष्टों से रहित हो सकता है? नानक दुखिया सब संसार!

सिद्धार्थ को समस्त भोग्य संसाधनों से घेर दिया गया. विवाह, पत्नी और फिर पुत्र भी. सातों पर्दों से भी जीवन के सच से सिद्धार्थ का साक्षात्कार हो ही गया. व्याधि, वृद्धावस्था और अंततः विदा. विचलित हो गये युवराज. हल खोजने सबको सोता छोड़कर कर गये 'महाभिनिष्क्रमण'. महाभिनिष्क्रमण भोग के पंक से निकलकर, सबके बीच होने के लिए.

स्वेच्छा से अनेक दैहिक कष्टों और घनघोर साधनाओं से शरीर को सुखाकर अंत में नगर से लौटती ग्रामवधुओं के गीत– 'वीणा के तारों को इतना मत कसो कि टूट जाएं और इतना ढीला भी मत छोड़ो कि संगीत ही न बजे' को सुनकर मध्य-मार्ग के निर्णय तक पहुंचे– 'मध्य-मार्ग' मतलब 'सम्यक-सत्य'. किसी प्रकार की अति नहीं. जीवन की नदी अतियों के छिछले किनारे नहीं होती वरन अतियों के दुकूल के बीच सरसराती हुई प्रवाहित होती है.

जीवन की यही सुरसरि सिद्धार्थ से बुद्ध बने शास्ता के साथ समस्त आर्यावर्त को आप्लावित करती हुई दक्षिण-पूर्व एशिया को सरसा गयी. सत्य और हिंसा के भाव से युक्त जन-प्रवाह दिशा-दिशा से बुद्धं शरणम्, धम्मम शरणम, संघम शरणम गुनगुनाता हुआ निकल पड़ा जैसे नदियां अपने परम गंतव्य समुद्र की ओर दौड़ती हैं. हजारों विहारों की स्थापना हुई, बुद्ध की करुणा ने उपेक्षित नारियों को भी 'संघ' में स्थान दिया.

लेकिन क्या हुआ अंत में? अपने अंतिम दिनों में संघों और सामान्य जीवन से दूर जा रहे 'धर्म' ने बुद्ध को विवश किया सोचने के लिए. अपना निर्वाण निकट जान उन्होंने अपने आत्मीय आनंद को, संघों को भंग करने की सलाह दी. लेकिन जैसे अधिक विस्तार से सृष्टि अपने स्रष्टा के नियंत्रण से बाहर होती जा रही है वैसे ही तब तक बात बुद्ध के हाथ से भी निकल चुकी थी. तभी अपने अंतिम काल में आनंद द्वारा मार्ग-दर्शन मांगने पर बुद्ध ने कहा– अप्प दीपो भव- अपने दीपक स्वयं बनो. पुन: 'संघ' से 'स्वयं' में स्थित हुए 'शास्ता'.

अंतत: अपना विवेक ही काम आता है क्योंकि हर जीवन और हर देश-काल कुछ न कुछ भिन्न होता है जिसे अपने ही तरीके से समझना-झेलना पड़ता है. यदि किसी दुर्घटना में तत्काल मृत्यु न हो तो सभी बूढ़े होते हैं, शनै: शनै: दृष्टि, श्रवण, वाणी से क्षीण

हो जाते हैं लेकिन चेतना ऐसी स्थिति में भी कायम रहती है. कोई किसी के साथ न तो हर क्षण रह सकता है, न ही किसी के दुख-सुख को स्वयं की तरह समझ सकता है. वास्तविकता तो यह है कि सामान्यतया व्यक्ति स्वयं भी अपने को नहीं समझ सकता तो किसी और से क्या उम्मीद करे. रात में कभी नींद उचट जाए तब कौन आपके साथ जागेगा? आप खुद ही अपने साथ होंगे. अकेले होंगे– अपने सभी भयों, चिंताओं, कर्मों-कुकर्मों के विचार और स्मृतियों के साथ. अपने अंधेरे और अपने उजाले के साथ. इस यात्रा में मार्ग खोजने के लिए अपना दीपक खुद को ही बनना है. यही सच है.

इसको जानना, समझना और शांतचित्त से नि:शेष हो जाना ही 'निर्वाण' है. नहीं तो क्या पता, इसके बाद भी भटकना पड़े!

वनगमन, सबके बीच में हुए बिना, 'स्वयं' से 'संघ' तक की यात्रा किये बिना 'अप्प दीपो' होना भी तो सम्भव नहीं है. स्रष्टा को भी तो 'एकोहं' से 'बहुस्याम:' होना पड़ता है. लेकिन साक्षात्कार-रियलाइज़ेशन संघ-समूह में नहीं हो सकता. निर्वाण सामूहिक नहीं होता, यह व्यक्तिगत उपलब्धि है. सृष्टि न तो पूर्ण रूप से व्यष्टि है, न समष्टि. न धरती है न आकाश. इन दोनों के बीच शून्य-रिक्त जैसा कुछ. धरती से दिखते चांद-तारे और आकाश से दिखते पेड़. एक रोशन और एक फल-फूल युक्त.'

बुद्ध दोनों में हैं– संघ में भी और निर्वाण में भी. तभी तो समस्त ब्रह्मज्ञान के बावजूद वेद का मंत्र भी यही कहता है–

सं गच्छध्वं सं वदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।

ऋग्वेद. 10.191.2

अर्थात् (हे जना:) हे मनुष्यो, (सं गच्छध्वम्) मिलकर चलो. (सं वदध्वम्) मिलकर बोलो. (व:) तुम्हारे, (मनांसि) मन, (सं जानताम्) एक प्रकार के विचार करे. (यथा) जैसे, (पूर्वे) प्राचीन, (देवा:) देवों या विद्वानों ने, (संजानाना:) एकमत होकर, (भागम्) अपने-अपने भाग को, (उपासते) स्वीकार किया, इसी प्रकार तुम भी एकमत होकर अपना भाग स्वीकार करो. सीधे-सीधे इसे इस अर्थ से समझें कि (हे मनुष्यो) मिलकर चलो. मिलकर बोलो. तुम्हारे मन एक प्रकार से विचार करें. जिस प्रकार प्राचीन विद्वान एकमत होकर अपना-अपना भाग ग्रहण करते थे, (उसी प्रकार तुम भी एकमत होकर अपना भाग ग्रहण करो). वास्तव में यही संगठन का और परस्पर संवाद का वह मंत्र है जिसके माध्यम से लोक अपने अस्तित्व को साक्षात प्रकट करता है. ❑

महाभिनिष्क्रमण

● एड्विन अर्नोल्ड

ब्रिटिश विचारक सर एड्विन अर्नोल्ड ने बुद्ध के जीवन और संदेश का परिचय देने वाली एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी थी– दि लाइट ऑफ एशिया. लगभग डेढ़ सौ साल पहले पद्य में लिखी यह पुस्तक पश्चिम को भगवान बुद्ध का जीवन-दर्शन समझाने के लिए बहुचर्चित रही है. राजघराने में जन्मा राजकुमार सिद्धार्थ जब गौतम बुद्ध के रूप में एक संत बन कर राजधानी में आया तो माता-पिता और पत्नी तथा बेटे के साथ राज्य की जनता को एक संदेश दिया था उसने. सर अर्नोल्ड ने उसे अपनी भाषा दी– उसमें अपनी श्रद्धा जोड़ी. प्रस्तुत है भगवान बुद्ध का वह महत्वपूर्ण संदेश.

जो नापा नहीं जा सकता, उसे शब्दों से मत नापो. विचारों के धागे को अथाह पानी में मत डुबाओ. जो पूछता है, गलती करता है, गलती वह भी करता है जो उत्तर देता है. इसलिए, इस बारे में बात मत करो.

पुस्तकों में लिखा है प्रारम्भ में सब तरफ अंधेरा ही अंधेरा था. रात के अंधेरे में ब्रह्म ध्यान मग्न था. ब्रह्म को मत खोजो, उस प्रारम्भ को भी खोजना कर्म है. उसे या किसी प्रकाश को मत खोजो.

क्या कोई देखने वाला नश्वर नेत्रों से

देख पायेगा? क्या कोई अनुसंधानी नश्वर मस्तिष्क से उसे जान पायेगा? एक के बाद दूसरा पर्दा उठता जायेगा, पर न जाने कितनी परतें बाकी रहेंगी.

समय के साथ सितारों का प्रकाश खो जाता है, पर प्रश्न बचा रहता है. यही जानना पर्याप्त है कि जीवन-मृत्यु, सुख-दुख और कारण और परिणाम का अस्तित्व जीवन में है.

उठते-गिरते ज्वार-भाटे की तरह है मनुष्य. मनुष्य जीवन नदी की तरह है, जिसमें लहरों पर लहरे आती हैं– कभी तेज़ लहर, कभी धीमी लहर. हर लहर एक जैसी लगती है, पर एक जैसी होती नहीं. वे दूर कहीं पहाड़ी झरनों से आती हैं, मैदानों में लम्बी दूरियां पार करती हैं और फिर समुद्र में समा जाती हैं. सूर्य की किरणें समुद्र के पानी पर पड़ती हैं, पानी वाष्प बन कर आकाश में जा पहुंचता है, बादलों से घुलता-मिलता है, पहाड़ों की ओर बढ़ता है, उनसे टकरा कर रिसने लगता है और फिर से नदी के स्रोत से बह निकलता है– कोई विराम नहीं, कोई शांति नहीं.

यह जानना पर्याप्त है कि जीवन में, स्वर्गों में, सभी विश्वों में भ्रमों का अस्तित्व है और संघर्ष और दबाव के घूमते चक्र से ये सारे भ्रम परिवर्तित होते रहते हैं– इस चक्र को कोई रोक नहीं सकता.

अंधेरे से प्रार्थना मत करो. अंधेरा प्रकाश में नहीं बदलेगा. मौन से कुछ मत मांगो, वह गूंगा है, कुछ नहीं बता सकता. धार्मिक अथवा चारित्रिक चीज़ों के बारे में सोचकर परेशान या क्रोधित होने की आवश्यकता नहीं. इससे कुछ नहीं मिलने वाला. बंधुओं और भगिनियों, असहाय देवताओं तथा अन्य महान कहलाने वाले प्राणियों को उपहार देकर अथवा उनके गीत गाकर उनसे कुछ मांगो मत. रक्त बहाकर बलि देकर उन्हें रिश्वत मत दो, उन्हें मिष्ठान्न खिलाकर भरमाओ मत. तुम्हें कहीं बाहर से मुक्ति नहीं मिलेगी. तुम्हें मुक्ति अपने भीतर ही खोजनी होगी– क्योंकि हर व्यक्ति अपनी कारा स्वयं ही बनाता है. हर व्यक्ति को अपनी ऊंचाइयां स्वयं नापनी पड़ती हैं. हमारी अपनी करनी ही हमारी प्रसन्नता और पीड़ा का कारण होती है. जो किया गया है, वही आगत को लायेगा– यह आगत बेहतर भी हो सकता है, और बुरा भी. स्वर्गों में रहने वाली परियां भी अपनी पिछली करनी का फल ही भोगती हैं.

नरक में वास करने वाले राक्षस भी अपने पिछले कर्मों का फल ही पाते हैं. जीवन में कुछ भी स्थायी नहीं रहता. अतीत में कमाये गये पुण्य भी समय के साथ नष्ट हो जाते हैं. पाप भी समय के साथ मिट जाते हैं.

अतीत में जो गुलाम था, वह भी अपने अच्छे कर्मों के फलस्वरूप राजकुमार के

रूप में जन्म ले सकता है. दूसरी तरफ कभी अतीत में राज करने वाला अपनी करनी और अकरनी के कारण चिथड़ों में जीवन बिताता दिख सकता है.

आप अपने भाग्य को इंद्र से भी ऊंचा उठा सकते हैं. और आप ही स्वयं को कीड़े-मक्खी जितना नीचा भी गिरा सकते हैं.

जब तक जीवन का अदृश्य चक्र घूमता नहीं है कोई विराम या शांति या थमने की जगह नहीं मिल सकती. जो ऊपर चढ़ता है, वही गिरता है; जो गिरता है वही ऊपर भी पहुंचता है. चक्र चलता ही रहेगा.

यदि आप परिवर्तन के चक्र से बंधे हैं, और शृंखला से अलग होने का कोई मार्ग नहीं है, तब व्यक्ति को समझ लेना चाहिए कि बंधनहीन प्राणी का हृदय एक श्राप है और वस्तुओं की आत्मा मात्र पीड़ा से बनी है.

तुम बंधे हुए नहीं हो. प्राणियों की आत्मा मधुर है और स्वतंत्र व्यक्ति का हृदय श्राप से नहीं बना है. हमारी इच्छा-शक्ति पीड़ा से अधिक सुदृढ़ है. इसी इच्छा-शक्ति से, जो अच्छा है वह समय के साथ बेहतर बन जाता है और अंतत: सर्वश्रेष्ठ भी.

मैं, बुद्ध, जो अपने सब भाइयों के आंसुओं के साथ रोता था, जिसका हृदय विश्व भर की पीड़ा से टूट गया था, अब हंस रहा हूं, क्योंकि मेरे पास वह स्वतंत्रता है! सुनो, ओ पीड़ा पाने वालो, जानो!

जानो कि तुम्हारी पीड़ा तुम्हारी अपनी निर्मिति है. कोई दूसरा तुम्हें जीने एवं मरने के लिए बाध्य नहीं करता. कोई तुम्हें बाध्य नहीं करता कि तुम जीवन-चक्र के कांटों को गले लगाओ. कोई दूसरा नहीं चाहता कि तुम चक्र के आंसुओं एवं कुछ नहीं से बने इसके केंद्र को चूमो. देखो, मैंने तुम्हें सत्य दिखाया है. नरक से नीचे, स्वर्ग से ऊपर एवं सितारों से कहीं पार, ब्रह्म से दूर, प्रारम्भ से भी पहले और अंतहीन एक दैवीय शक्ति है जो अपने नियमों के अनुसार अच्छाई देती है. यही अच्छाई ब्रह्मांड में विचरण करती है.

इस शक्ति के छूने से गुलाब की कली खिलती है. इसी के हाथ कमल की पांखुरियों को आकार देते हैं. यही शक्ति वसंत के वस्त्र बुनती है. आकाश में रंग-बिरंगा इंद्रधनुष यही रचती है. यह सितारों पर राज करती है. आकाशीय विद्युत, हवा और वर्षा इसके गुलाम हैं.

एक अंधेरे में यह मनुष्य का हृदय रचती है. यह निरंतर कार्यरत रहती है, अतीत की गलतियों-खंडहरों को समतल बनाती है. इसी के बनाये नियमों के अनुसार चींटी को अपना रास्ता ढूंढ़ने की ताकत मिलती है.

इस शक्ति की सक्रियता को किसी भी तरीके से रोका नहीं जा सकता. सब

इसे पसंद करते हैं. यह मां के स्तनों में धवल दूध भरती है. सांप के मुंह में विष भी यही भरती है. यही शक्ति आकाशीय पिंडों को एक निश्चित तरीके से गतिमान रखती है. आकाश में यह अदृश्य छतरी रचती है, और धरती के गहरे अंधेरों में बहुमूल्य धातुएं छिपाती है. प्रकृति के माध्यम से यह शक्ति अपने रहस्यों का पिटारा हमारे सामने खोलती है.

इस सिद्धांत के अनुसार छुरा मारने वाला स्वयं अपने को ही छुरा मारता है. कर्म के नियम का मतलब यही है कि आज किसी को छुरा मारने वाला कभी उसी व्यक्ति के हाथों छुरे का शिकार होगा, जिसे वह छुरा मार रहा है.

यह विध्वंस करती है, और बचाती भी है. इससे बच कर नहीं जी सकते हम. अतीत में किये अपने कर्मों के फल भोग कर ही हम इस शक्ति के साथ रह सकते हैं. प्यार और जीवन धागा हैं और मृत्यु तथा पीड़ा वह भरनी है, जिसके माध्यम से जीवन का ताना-बाना बुना जाता है.

यह चीज़ों को बनाती है, बिगाड़ती है और फिर उन्हें अपने मूल रूप में ले आती है. यह सारी प्रक्रिया अंततः वस्तु को पहले से बेहतर बनाने के लिए ही है. लेकिन यह सब उस महान शक्ति के कार्यों का एक नमूना-भर है. उन कार्यों की संख्या उससे कहीं अधिक है जो हम देखते अथवा देख पाते हैं. इस शक्ति के नियम मनुष्यों के हृदय मस्तिष्क उनके विचारों, व्यवहार और आकांक्षाओं को भी परिचालित करते हैं.

यह अदृश्य शक्ति तुम्हारी सहायता करती है, बिना बोले भी यह तूफानों से अधिक ज़ोरदार आवाज़ में बोलती है. मनुष्य में करुणा और प्यार इसी शक्ति के माध्यम से सृजित होते हैं.

यह शक्ति किसी से घृणा नहीं करती. इसकी सत्ता को चुनौती देने वाला, हारता ही है. दूसरी ओर, जो इससे सहयोग करता है, उसके अनुसार चलता है, अंततः विजयी होता है. अतीत में किये गये विस्मृत अच्छे काम शांति और आनंद के माध्यम से सुफल देते हैं और अजाने गलत काम पीड़ा.

यह शक्ति सबकुछ देख रही है, हर बात का ध्यान रख रही है. हम एक सही काम करते हैं तो यह शक्ति हमें बदले में सुफल देती है और गलत काम के लिए हमें दंडित करती है. फल मिलने की इस प्रक्रिया में बिलम्ब हो सकता है, पर यह सम्भव नहीं कि अच्छा या बुरा फल मिले नहीं.

इस शक्ति को क्रोध नहीं आता. यह क्षमा भी नहीं करती. इसकी तराजू का तोल कभी गलत नहीं होता. इसके लिए समय का कोई अर्थ नहीं है. निर्णय कल

भी हो सकता है, और फिर कभी भी. पर निर्णय होता अवश्य है.

इस सिद्धांत के अनुसार छुरा मारने वाला स्वयं अपने को ही छुरा मारता है. कर्म के नियम का मतलब यही है कि आज किसी को छुरा मारने वाला कभी उसी व्यक्ति के हाथों छुरे का शिकार होगा, जिसे वह छुरा मार रहा है. झूठ बोलने वाला अपने ही विनाश को आमंत्रित करता है. चोर या लुटेरे को दुगना दंड भुगतना पड़ता है. कर्मफल के इस सिद्धांत की विशेषता यह है कि यह नीति-परायणता पर आधारित है, कोई इसमें रुकावट नहीं ला सकता. यह सिद्धांत प्यार से संचालित होता है. इसका अंतिम लक्ष्य शांति और पूर्णता है. इसलिए हर व्यक्ति को इस सिद्धांत को मानना चाहिए.

बंधुओं, धर्मग्रंथों में स्पष्ट कहा गया है कि हर व्यक्ति का जीवन पूर्व में किये गये उसके कार्यों का परिणाम है. गलत कृत्य विषाद और पीड़ा देते हैं और सही कृत्यों से आनंद और प्रसन्नता की प्राप्ति होती है.

जो बोओगे, वही काटोगे.

मनुष्य इस विश्व में वही काटने आता है, जो पिछले जन्मों में उसने बोया है. पिछले जन्मों में बोयी ज़हरीली खर-पतवार भी इस जन्म में काटनी पड़ती है. फिर भी, यदि वह सही ढंग से काम करता है, ज़हरीले पौधों आदि को निकाल कर उनकी जगह अच्छे बीज बोता है तो ज़मीन साफ-सुथरी हो जायेगी, अच्छी फसल भी होगी.

जो यह जानने के लिए जीता है कि पीड़ा कहां से उपजती है और धैर्यपूर्वक उसे सहता है, पिछले बुरे कर्मों का ईमानदारी से उधार चुकाता है, प्यार और सचाई का व्यवहार करता है, अपने साथ जो कुछ हो रहा है, उसके बदले में अच्छा ही करता है, ईमानदारी, प्यार, दया, करुणा से भरा जीवन जीता है, तो वह अपने पीछे एक अच्छा हिसाब छोड़ जायेगा. उसकी बुराइयां समाप्त हो जायेंगी. उसकी अच्छाई अच्छे फल लाने वाली होगी.

ऐसे व्यक्ति को वह नहीं जीना पड़ेगा, जिसे तुम जीवन कहते हो. उसने जब जीवन प्रारम्भ किया था, तब जो जन्मा था, वह समाप्त हो जाता है. उसने वह उद्देश्य पूरा कर लिया है जिसके लिए उसे मनुष्य बनाया गया था.

अब इच्छाएं उसे नहीं सतायेंगी, पाप उस पर धब्बा नहीं लगायेंगे. लौकिक आनंद की पीड़ा और दुख उसकी शांति पर आक्रमण नहीं करेंगे. वह जीवन-मृत्यु के चक्र से मुक्ति पा जायेगा. उसे निर्वाण प्राप्त हो जायेगा. वह जीवन से एकाकार हो जायेगा, पर जियेगा नहीं. वह अनुकम्पित है, होने से मुक्त है. ❑

अहंकार की हर जीत हार है

● ओशो

समर्पण अनिवार्य है. फिर चाहे मार्ग भक्ति का हो, चाहे ध्यान का. फर्क यही पड़ेगा कि भक्ति के मार्ग पर समर्पण पहले है, पहले चरण में, और ध्यान के मार्ग पर समर्पण है अंतिम चरण में.

भक्ति कहती है, अहंकार को छोड़कर ही मंदिर में प्रवेश करो. क्योंकि जिसे छोड़ना ही है, उसे इतने दूर भी क्यों साथ ढोना? छोड़ ही दो. भक्ति पहले ही क्षण में अहंकार को गिरा देती है. भक्ति को सुविधा है, क्योंकि भगवान की धारणा है. ध्यानी को वैसी सुविधा नहीं है. ध्यानी चलता है बिना किसी धारणा के. तो अहंकार बचा रहेगा. किसके चरणों में रखें अहंकार को? ध्यानी तो अनुभव के बाद ही, गहरे अनुभव में उतरकर ही, आखिरी घड़ी में, जब कुछ और शेष न रह जायेगा, सिर्फ सूक्ष्म अहंकार मात्र शेष रह जायेगा, वही पर्दा रहेगा. बहुत झीना पर्दा, इतना झीना, इतना पारदर्शी कि बहुतों को तो लगेगा कि यह पर्दा है ही नहीं. जैसे शुद्ध कांच. जब तक तुम पास ही न आ जाओगे, तुम्हें लगेगा कोई पर्दा है ही नहीं बीच में. सब साफ दिखायी पड़ रहा है. लेकिन जब तुम पास आओगे, तब टकराओगे. उस

घड़ी में अहंकार को छोड़ना पड़ता है. अंतिम घड़ी में.

तो ध्यान-मार्ग भी अंतत: कैसे तुम अहंकार को छोड़ोगे उसके लिए व्यवस्था जुटाता है. जुटानी ही पड़ेगी. यह बुद्ध की व्यवस्था है कि उन्होंने त्रि–शरण कहे. बुद्ध इन्हें त्रि–रत्न कहते हैं. हैं भी ये रत्न. इनसे बहुमूल्य और कुछ भी नहीं, क्योंकि इन्हीं को खोकर हमने सब खोया है. और इन्हीं को पाकर हम सब पा लेंगे. ये हैं तीन रत्न–

बुद्धं शरणं गच्छामि,

संघं शरणं गच्छामि,

धम्मं शरणं गच्छामि.

और इनके पीछे एक तर्कसरणी है. समझो.

पहले तो बुद्ध के प्रति. बुद्ध का अर्थ गौतम बुद्ध नहीं है. इस भ्रांति में मत पड़ना. बुद्ध का अर्थ है– बुद्धत्व.

एक बार बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप तो कहते हैं कि किसी की शरण में जाने की ज़रूरत नहीं है और लोग आपके सामने भी आकर कहते हैं– बुद्धं शरणं गच्छामि? आप चुप रहते हैं. चुप्पी से तो समर्थन मिलता है. यह तो मौन समर्थन हो गया. आपको इनकार करना चाहिए.

तो गौतम बुद्ध ने कहा, वे मेरी शरण जाते हों तो मैं इंकार करूं, और मेरी शरण तो जाएंगे भी कैसे? क्योंकि मैं तो बचा भी नहीं. वे बुद्धत्व की शरण जाते हैं. जो बुद्ध हुए हैं अतीत में, जो बुद्ध आज हैं, और जो बुद्ध कभी होंगे, उन सभी के सारभूत तत्व का नाम बुद्धत्व है. जो कभी जागे और कभी जागेंगे और जाग रहे हैं, उस जागरण का नाम बुद्धत्व है.

तो पूछने वाले ने पूछा, फिर आपके ही चरणों में आकर क्यों कहते हैं? कहीं भी कह दें. तो उन्होंने कहा, वह उनसे पूछो, वह उनकी समस्या है. उन्हें सब जगह दिखाई नहीं पड़ता, उन्हें मुझमें दिखाई पड़ता है. चलो, यहीं से शुरूआत सही, कहीं से तो शुरूआत हो! झुकना कहीं तो सीखें. आज मुझमें दिखा है, कल और में भी दिखेगा, परसों और में भी दिखेगा, फिर उनकी दृष्टि बड़ी होती जाएगी. एक दफा दिख जाए हीरा, तो फिर तुम्हें बहुत जगह दिखाई पड़ेगा. और एक बार हीरे की ठीक-ठीक परख आ जाए, तो फिर जौहरी की दुकान पर जो साफ-सुथरे, निखरे हीरे रखे हैं, उनमें ही नहीं, खदानों में भी जो हीरे पड़े हैं, जो अभी साफ-सुथरे नहीं हैं, उनमें भी हीरा दिखाई पड़ जाएगा.

तो बुद्ध में और साधारण व्यक्ति में इतना ही फर्क है कि साधारण व्यक्ति ऐसा हीरा है जो अभी खदान में पड़ा है, और बुद्ध ऐसे हीरे हैं जिसको साफ-सुथरा किया गया, तराशा गया, जिस पर चमक आ गयी है. बुद्ध ने अपने हीरे के साथ जो करना था कर लिया, तुमने अपने हीरे के साथ जो करना था अभी नहीं किया. लेकिन

जिसको हीरा पहचान में आ गया, उसे तो तुममें भी हीरा दिखाई पड़ जायेगा.

तो बुद्ध ने कहा, अगर मुझमें उन्हें दिखाई पड़ती है बुद्धत्व की झलक, चलो, यही ठीक! आज यहां दिखाई पड़ती है, कल और भी कहीं दिखाई पड़ेगी, फिर दिखाई पड़ती जायेगी. फिर सब तरफ दिखाई पड़ने लगेगी.

तो पहला चरण है, एक के प्रति समर्पण. क्योंकि वहां से, उस झरोखे से तुम्हें सूरज दिखाई पड़ा. खयाल रखना, जब तुम किसी झरोखे के पास खड़े होकर सूर्य को नमस्कार करते हो तो तुम झरोखे को नमस्कार नहीं कर रहे हो. हालांकि चाहे तुम्हें पहले ऐसा ही लगता हो कि इस झरोखे की बड़ी कृपा– इसी से तो सूरज दिखाई पड़ा न! नहीं तो अंधेरे में ही रहते– तो चाहे तुम झरोखे को धन्यवाद भी दो, लेकिन झरोखे के माध्यम से तुम धन्यवाद तो सूरज को ही दे रहे हो. झरोखे ने तो कुछ किया नहीं, सिर्फ द्वार दिया, बाधा नहीं बना. बुद्ध का इतना ही अर्थ है– जिसके भीतर सब बाधा गिर गयी है, तुम आर-पार देख सकते हो.

तो पहली समर्पण की भावना है – बुद्धं शरणं गच्छामि.

संन्यास तो अभीप्सा है, खबर है कि मैं अब अपने जीवन की धारा बदलता हूं. अब नहीं धन होगा मूल्यवान मेरे लिए. अब होगा ध्यान मूल्यवान मेरे लिए. अब नहीं खोजूंगा स्थूल को, सूक्ष्म की यात्रा पर जाता हूं.

दूसरी समर्पण की धारणा है– संघं शरणं गच्छामि. संघं का अर्थ होता है, उन सबको जो जागे हैं. उन सबको जो जाग रहे हैं. उन सबको जो जागने के करीब आ रहे. उन सबको जो करवट ले रहे. उन सबको जिनके सपने में जागरण की पहली किरण पड़ गयी है. जिनकी नींद में खलल पड़ गयी है. तो संघ का स्थूल प्रतीक तो यह है कि जिन लोगों ने बुद्ध से दीक्षा ले ली है, उन समस्त संन्यासियों की मैं शरण जाता हूं. लेकिन इसका मूल अर्थ तो यही हुआ न कि जिन्होंने स्रोत में प्रवेश कर लिया, जो स्रोतापन्न फल को प्राप्त हो गये. जिन्होंने संन्यास लिया है.

संन्यास तो अभीप्सा है, खबर है कि मैं अब अपने जीवन की धारा बदलता हूं. अब नहीं धन होगा मूल्यवान मेरे लिए. अब होगा ध्यान मूल्यवान मेरे लिए. अब नहीं खोजूंगा स्थूल को, सूक्ष्म की यात्रा पर जाता हूं. जिसको मृत्यु मिटा देती है, अब उस पर मेरी आंख खराब नहीं करूंगा, अब अमृत की खोज में जाता हूं. अंधेरे से प्रकाश की तरफ, मृत्यु से अमृत की तरफ, असत्य से सत्य की तरफ, ऐसी जो प्रार्थना है वही तो संन्यास है. असतो मा सद्गमय.

संघ का अर्थ है, वे सब जो स्रोत– आपन्न हो गये. वे सब, जिन्होंने निर्णय लिया है सत्य की खोज का. जो सत्य के अन्वेषण पर निकल गये हैं. उनकी शरण जाता हूं. थोड़ी दृष्टि बड़ी हुई, अब बुद्ध ही काफी नहीं. बुद्ध में तो दिखता ही है, लेकिन अब उनमें भी दिखाई पड़ने लगा जो बुद्ध के पास बैठे हैं.

होना भी यही चाहिए. जब बुद्ध के पास रहोगे तो उनकी सुगंध पकड़ेगी न तुम्हें. इस बगीचे से घूमकर निकलोगे, घर जाकर पहुंच जाओगे अपनी पुरानी गंदगी में, तो भी तुम पाओगे वस्त्रों में थोड़ी-सी फूलों की गंध साथ चली आयी है. बुद्ध के पास बैठोगे-उठोगे, तो उनका स्वाद लगेगा, उनकी बूंदें तुम पर बरसेंगी, उनका स्पर्श तुम्हें होगा. जो हवा उन्हें छुएगी, वही हवा तुम्हें भी छुएगी. बुद्ध के पास उठोगे–बैठोगे, उनका रंग लगेगा, उनका ढंग लगेगा. बुद्ध के पास उठोगे–बैठोगे, तो बुद्धत्व संक्रामक है. याद रखना, बीमारी ही थोड़े ही लगती है, स्वास्थ्य भी लग जाता है. पागलपन ही थोड़े ही लगता है; पागलों के साथ रहोगे, पागल हो जाओगे, मुक्तों के साथ रहोगे तो मुक्त हो जाओगे- होने लगोगे.

तो अब दृष्टि थोड़ी बड़ी हुई. अब बुद्ध ही नहीं दिखाई पड़ते, अब बुद्ध में वे सब दिखाई पड़ने लगे जो उनके आसपास हैं. जो सब बुद्ध की तरफ उन्मुख हैं. दूर है अभी मंजिल उनकी, चल पड़े हैं. बुद्ध पहुंच गये गंगासागर, गंगा गिर गयी सागर में, लेकिन गंगा में जो और लहरें चली जा रही हैं सागर की तरफ भागती हुई, वे भी पहुंच ही जाएंगी, पहुंचने को ही हैं, आज नहीं कल की ही बात है, समय का ही भेद है. पहले नमस्कार किया वृक्ष को, फिर नमस्कार किया बीज को, क्योंकि बीज भी वृक्ष तो हो ही जायेगा. देर– अबेर के लिए नमस्कार रोकोगे क्या! सिर्फ समय के कारण नमस्कार को रोकोगे क्या!

और जब एक बार नमस्कार करने का मज़ा आ जाता है, जब बुद्ध के चरणों में सिर रखने का मज़ा आ गया, तो मन करेगा जितने चरणों में सिर रखा जा सके, रखो. जब एक बार इतना मज़ा आया है और एक के पास इतना मज़ा आया है, काश, तुम्हारा सिर सभी के चरणों में लोटने लगे तो आनंद की धार बह उठेगी.

इसलिए, संघं शरणं गच्छामि.

और भी एक कदम आगे बात उठती है, क्योंकि संघ की शरण जाने का अर्थ हुआ, जो सत्य की खोज कर रहे हैं उनकी शरण जाता हूं. बुद्ध की शरण जाने का अर्थ हुआ, जिसने सत्य पा लिया है उसकी शरण जाता हूं. और धम्मं शरणं गच्छामि का अर्थ होता है, बुद्ध की शरण भी तो इसीलिए गये न कि उन्होंने सत्य को पा लिया, और संघ की शरण भी इसीलिए गये न कि वे सत्य की खोज में जा रहे हैं, तो सत्य की ही शरण जा रहे हो, चाहे बुद्ध

की शरण जाओ, चाहे संघ की शरण जाओ. इसलिए, धम्मं शरणं गच्छामि.

धम्म का अर्थ होता है सत्य. जो परम सत्य है, वही धर्म है. इसलिए अंतिम रूप में आखिरी शरण है– धर्म की शरण जाता हूं; उस परम नियम की शरण जाता हूं जो संसार को चला रहा है; उस ऋत की शरण जाता हूं, ताओ की शरण जाता हूं, जो संसार को धारे हुए है. धर्म का अर्थ, जिसने संसार को धारण किया है. जिस पर सब खेल चल रहा है, उस परम में डूबता हूं.

बौद्ध उसे भगवान नहीं कहते, क्योंकि भक्त की वह भाषा नहीं है, वे उसे कहते हैं, धर्म. वह ज्ञानी की भाषा है, ध्यानी की भाषा है. वे कहते हैं, नियम, परम नियम, शाश्वत नियम. भक्त इसी को भगवान कहता है, फर्क कुछ भी नहीं है. भक्त कहता है, भगवान ने सबको धारा हुआ है. और ज्ञानी कहता है, धर्म ने सबको धारा हुआ है. शब्दों का भेद है. भक्त धर्म को रूप दे देता है, तो भगवान. प्रतिमा बना लेता है, तो भगवान. इतनी प्रतिमा नहीं बनाता, नियम को शुद्ध नियम रहने देता है. रूप नहीं देता, व्याख्या नहीं देता.

भक्त कहता है, भगवान ने सबको धारा हुआ है. और ज्ञानी कहता है, धर्म ने सबको धारा हुआ है. शब्दों का भेद है. भक्त धर्म को रूप दे देता है, तो भगवान. प्रतिमा बना लेता है, तो भगवान.

तो तीसरा रत्न है– धम्मं शरणं गच्छामि. तीसरी शरण में जाकर तुम समस्त की शरण में चले गये - सार्वभौम है धर्म. पहले बुद्ध की शरण में गये, वह एक; फिर संघ की शरण में गये, अनेक, फिर धर्म की शरण में गये, सर्व. सार्वभौम. विसर्जन पूरा हो गया. इसके पार विसर्जन करने को कुछ है नहीं. तुम उससे एक हो गये, जो है.

ऐसे ये तीन रत्न हैं. इनके सम्बंध में कुछ और बातें भी समझ लेनी चाहिए. पहली बात, बुद्ध की शरण जाना सबसे सरल है. ऐसा रोज यहां होता है. कोई आकर मुझसे कहता है कि हमने समर्पण आपको किया है, हम लक्ष्मी की क्यों मानें? तो मैं उनसे कहता हूं मुझे समर्पण करना सरल है. तुम लक्ष्मी को समर्पण करोगे तो और रस आयेगा, और गहरा रस आयेगा. मुझे समर्पण करना तो बहुत सुगम है. क्योंकि तुम मेरे इतने प्रेम में हो. तुम मेरे रस में ऐसे डूबे हो.

कोई भोजनालय में काम करता है, दीक्षा से उसकी नहीं बनती, तो मैं उससे कहता हूं, जाकर दीक्षा को समर्पण कर दो. वह कहता है, दीक्षा को! आपकी शरण में हम आये हैं, दीक्षा की शरण में नहीं. मैं उनसे कहता हूं, तो मैं ही तो तुमसे कह रहा हूं न! तुम मेरी शरण आ गये,

अब गये हाथ से, अब मैं कहता हूं तुम जाओ दीक्षा के शरण में, तो मेरी मानोगे या नहीं? कहते हैं, मानेंगे तो ज़रूर लेकिन दीक्षा की शरण! दीक्षा तो हमारे ही जैसी है! कठिन हो गया दीक्षा की शरण जाना. लेकिन मैं कहता हूं, जाओ.

मेरी शरण आना तो बहुत सरल है, क्योंकि तुम मेरे लगाव में पड़े हो, तुम मेरे प्रेम में पड़े हो, तुम दीवाने हो, तो झुक गये. दीक्षा से तुम्हारा कोई ऐसा लगाव नहीं, ऐसा कोई दीवानापन नहीं, दीक्षा तो लगती ठीक तुम जैसी है, लेकिन अर्थ समझना. जब तक तुम तुम जैसों के शरण में नहीं जाओगे, तब तक तुमने अभी तक अपने को समझा ही नहीं. क्योंकि जो तुम जैसा है, वह तुम्हें आदर योग्य नहीं मालूम होता, इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ हुआ कि तुम स्वयं ही अभी अपनी आंखों में आदर योग्य नहीं हो. जब तुम कहते हो कि अपने ही जैसे की शरण जाएं, तो तुम क्या कह रहे हो, तुमने शायद सोचा नहीं. तुम यह कह रहे हो कि मैं तो निंदित, पापी, अपराधी, और मेरे ही जैसे किसी की शरण जाऊं! तो तुम्हारे मन में बड़ी आत्मग्लानि है. तुम्हारे मन में बड़ा आत्म-तिरस्कार है. अपमान है अपना.

और जिसके मन में अपने प्रति अपमान है, वह कैसे आत्मवान हो सकेगा'? जो अपनी निंदा कर रहा है, जो अभी अपना सम्मान भी नहीं सीख सका, वह अपने भीतर कैसे प्रवेश कर सकेगा? जो अभी अपने को प्रेम भी नहीं कर सकता, वह किसको प्रेम कर सकेगा? कहने वाला तो यही कह रहा है कि शायद वह दीक्षा का असम्मान कर रहा है यह कहकर कि वह तो मेरे ही जैसी है, उसकी क्या शरण जाना!

जिस दिन तुम अपने ही जैसों की शरण जाने लगोगे, उस दिन तुम्हारे जीवन में आत्म-गौरव आयेगा.

तो बुद्ध की शरण जाना तो बड़ा सरल है. सरल से शुरू करो मगर सरल पर अटके मत रह जाना. इसलिए संघं शरणं गच्छामि. संघ का मतलब, दीक्षा, लक्ष्मी, मैत्रेय, इनकी शरण जाओ, कभी-कभी अपनी ही शरण. जाओ, कभी-कभी अपने ही पैर छू लो. क्योंकि तुम्हारे भीतर भी परमात्मा विराजमान है. लगेगा पागलपन, पहले तो दूसरे के पैर छूने में बड़ा पागलपन लगता है, फिर अपने पैर छूने में तो निश्चित ही पागलपन लगेगा. लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, कभी-कभी अपने भी पैर छुओ. तुम्हारे भीतर भी परमात्मा ही विराजमान है– उतना ही जितना मेरे भीतर, उतना ही जितना बुद्ध के भीतर, उतना ही जितना महावीर के भीतर.

कभी अपने पैर भी छूना, और तुम अपूर्व पुलक का अनुभव करोगे. कभी अपने जैसों के भी पैर छूना. अपने से बड़ों के पैर छूने में तो अहंकार गिरता नहीं.

कैसे गिरेगा? जिसको तुम अपने से बड़ा मानते हो, उसके पैर छूने में कैसे अहंकार गिरेगा? जिसको तुम अपने जैसा मानते हो, या अपने से छोटा मानते हो, उसके पैर छूने में अहंकार गिरेगा.

मगर स्वाभाविक है, पहले तो यात्रा वहां से करनी होती है जो सुगम हो. इसलिए बुद्धं शरणं गच्छामि. पहले अपने से विराट के चरण छू लो. फिर संघं शरणं गच्छामि. फिर संघ में तो सब तरह के लोग होंगे, कोई तुम जैसा होगा, कोई तुमसे अच्छा होगा, कोई तुमसे गया– बीता होगा. संघ की शरण जाने का अर्थ है, अब मैं हिसाब नहीं रखता कि कौन बड़ा, कौन छोटा, कौन ऊपर, कौन नीचे, अब तो जो भी सत्य की खोज कर रहे हैं, सब की शरण जाता हूं.

और तीसरा, धम्मं शरणं. लेकिन संघ की शरण में भी सीमा है. अगर बुद्ध के मानने वाले बौद्ध भिक्षुओं की शरण जाते हैं, तो वे जैन भिक्षुओं की शरण तो न जाएंगे, हिंदू संन्यासियों की शरण तो न जाएंगे, मुसलमान फकीरों की शरण तो न जाएंगे, ईसाइयों की शरण तो न जाएंगे. सीमा है. और जहां सीमा है, वहां अभी हम परमात्मा से दूर हैं. इसलिए आखिरी कदम उठाया जाता है, सीमा तोड़ दी जाती है– धम्मं शरणं गच्छामि. अब कौन हिंदू कौन मुसलमान, कौन ईसाई, कौन सिख, कौन जैन, कुछ भेद न रहा. हिंदू मुसलमान, ईसाई की तो बात ही छोड़ो; पौधे, पशु, पक्षी, पत्थर, पहाड़, चांद-तारे, सबके भीतर जो एक ही सत्य समाया हुआ है, हम उसकी शरण जाते हैं.

ऐसे ये त्रि-रत्न हैं. ये बड़े बहुमूल्य हैं. इनका अर्थ समझोगे, तो इनके द्वारा कुंजी मिल सकती है.

तो चाहे पूजा-घर में रखा हुआ लोहा हो और चाहे हत्यारे के घर रखा हुआ लोहा हो, लोहे में कोई फर्क नहीं पड़ता. इसलिए पारस के पास दोनों लोहे ले आओ तो दोनों ही सोना हो जाते हैं. लेकिन संत के पास हत्यारे को लाओ और पूजा करने वाले को लाओ तो फर्क पड़ेगा. दोनों लोहों में तो कोई फर्क था ही नहीं, दोनों लोहे थे. तुमने लोहे पर झूठे गुण आरोपित कर लिए. हत्यारे का गुण तुमने लोहे पर आरोपित कर लिया. वह हत्यारे की बात थी.

तो पहली तो बात तुम ठीक से समझना कि पारस लोहे को सोना कर सकता है, मिट्टी के ढेले को नहीं. और अगर तुम सोना न बन पा रहे हो तो थोड़ा विचार करना– लोहा हो?

> मिट्टी के लोंदे का अर्थ है कि तुमने अपने जीवन को अपने हाथ में लेना नहीं सीखा. तुम थपेड़ों पर जी रहे हो. कोई कर दे, तुम बस बैठे हो. तुम भिखारी हो. कोई दे दे तो ठीक, कोई न दे तो गाली-गलौज.

लोहा अगर हो, तो पात्र हो. तो बन जाओगे. अगर लोहा ही नहीं हो, तब बड़ी मुश्किल है.

तुम्हारा मन यह होता है कि किसी पर टाल दो ज़िम्मेदारी. तुम्हारा मन यह कहेगा कि अभी तक नहीं बने सोना, मतलब साफ है कि जिसको पारस समझा वह पारस नहीं है. यही तो आदमी का मन है, जो ज़िम्मेदारियां टालता है. तुम कुछ करना नहीं चाहते, अब तुम प्रतीक्षा करते हो कि अगर हो जाए तो ठीक, न हो तो पारस की ज़िम्मेदारी.

इसी को तो मैं मिट्टी का लोंदा होना कहता हूं. मिट्टी के लोंदे होने का मतलब है, कुछ भी करने को नहीं, पड़े हैं मिट्टी के लोंदे की तरह- गोबर-गणेश! लगते हैं गणेश जी जैसे, बिलकुल गणेश जी जैसे लगते, मगर हैं गोबर के. मिट्टी के लोंदे का अर्थ है कि तुमने अपने जीवन को अपने हाथ में लेना नहीं सीखा. तुम थपेड़ों पर जी रहे हो. कोई कर दे, तुम बस बैठे हो. तुम भिखारी हो. कोई दे दे तो ठीक, कोई न दे तो गाली-गलौज. लेकिन तुम उठकर कुछ भी करने की तैयारी में नहीं हो. यह तुम मिट्टी के लोंदे हो. पारस भी तुम्हें कुछ न कर पायेगा.

थोड़ा उठो. थोड़ा करने में लगो. थोड़ा जीवन को बदलने के लिए श्रम, थोड़ा ध्यान, थोड़ी प्रार्थना, थोड़ी पूजा.

बुद्ध ने कल कहा, कि गलत जो मालूम पड़े, उस आदत को तोड़ना. जो ठीक मालूम पड़े, उसके अभ्यास को गहरा करना. और चित्त को रोज-रोज निखारते जाना ताकि और- और साफ-साफ दिखायी पड़ने लगे कि क्या गलत है, क्या ठीक है.

अक्सर लोग सोचते हैं कि जैसे यह कोई मेरी ज़िम्मेदारी है. अगर तुम भटक गये, तो तुम भगवान के सामने यह न कह सकोगे कि हम क्या करें, कोई पारस मिला ही नहीं. तुम यह न कह सकोगे. अगर तुम ठीक से समझो, तो पारस भी तुम्हारे भीतर पड़ा है, तुम उसे खोजो. बिना खोजे न मिलेगा. पारस कहीं बाहर नहीं रखा है. पारस भी तुम्हारे भीतर पड़ा है. उस पारस का नाम ही ध्यान है, सुरति. या जो भी नाम तुम देना चाहो, समाधि, सम्बोधि. उस पारस का नाम ही ये सब शब्द उपयोग किये गये हैं. उस पारस को खोजो, वह तुम्हारी चेतना में पड़ा है. तुम्हारी चेतना ही जैसे-जैसे निखार पर आती, शिखर बनता चेतना का, वैसे-वैसे पारस निर्मित हो जाता है. और चेतना का पारस निर्मित हो जाए तो जीवन का लोहा तत्क्षण सोना बन जाता है.

मेरे आधार पर तुम सोना नहीं बन सकते, मेरे आधार पर तुम अपने भीतर का पारस खोज सकते हो. गुरु तुम्हें, पारस नहीं बना सकता गुरु, लेकिन गुरु ने अपना पारस पा लिया है तो वह जानता है, कैसे पारस को पाया जाता है. वह तुम्हें

बता सकता है कि तुम अपने पारस को कैसे पा सकते हो.

और अच्छा भी यही है कि गुरु पारस नहीं बनता, नहीं तो तुम तो नपुंसक के नपुंसक रह जाते. तुम्हारा क्या मूल्य? पारस ने तुम्हें सोना बना दिया और फिर कहीं कोई एंटी-पारस मिल जाता, तो फिर लोहा का लोहा कर देता. तुम वही के वही रहे. तुम कहते, अब हम क्या करें, हमारे हाथ में तो कुछ है नहीं. पारस मिल गया तो सोना बन गये, एंटी-पारस मिल गया तो लोहा हो गये! और ध्यान रखना, दुनिया में दोनों चीजें होती हैं. एंटी-पारस की बात शास्त्रों में नहीं है, क्योंकि शास्त्रों में बहुत सी बातें तुम्हारे लोभ के कारण लिखी गयी हैं. क्योंकि तुमने ही लिखी हैं. या तुम जैसों ने ही लिखी हैं. या तुम जैसों ने ही लिखवा ली हैं. तो एंटी-पारस की कोई बात नहीं है. लेकिन इस जगत में हर चीज का विरोधी होता है.

पात्रता का अर्थ होता है कि तुम उठो, आंख खोलो, थोड़ा चलो, मेरा हाथ तुम्हारा साथ देने को तैयार है, मैं तुम्हें दूर तक ले चलने को राजी हूं, लेकिन उठो, चलो. तुम सो रहे हो चादर ताने और तुम कहते हो, मंजिल नहीं मिलती!

अगर ऐसा है कि पारस से लोहा सोना हो जाता है, तो ज़रूर कहीं कोई ऐसी कीमिया होगी जिससे सोना लोहा हो जाए. फिर तो तुम बिलकुल ही नपुंसक हो गये, तुम्हारे हाथ में कुछ भी न रहा.

नहीं, इस तरह पारस से सोना बनना भी मत! अगर मैं कहूं भी कि मैं बनाने को तैयार हूं, तो कहना, रुको, मुझे खोजने दो खुद. क्योंकि अपने से बनूंगा तो फिर मुझे कोई मिटा न सकेगा. ऐसे किसी और से बन गया, तो मिट जाऊंगा. फिर कोई मिटा देगा. तो ऐसे बनने का कोई मूल्य नहीं है. यह बड़ा सस्ता बनना हुआ. और सत्य इतना सस्ता नहीं मिलता है.

पात्रता का इतना ही अर्थ होता है कि तुम उठो, आंख खोलो, थोड़ा चलो, मेरा हाथ तुम्हारा साथ देने को तैयार है, मैं तुम्हें दूर तक ले चलने को राजी हूं, लेकिन उठो, चलो. तुम सो रहे हो चादर ताने और तुम कहते हो, मंजिल नहीं मिलती! तुम यहां से हटना भी नहीं चाहते. तुम चाहते हो कोई स्ट्रेचर में डालकर और तुम्हें मंजिल पहुंचा दे. तो फिर मंजिल न हुई, अस्पताल होगा. फिर मंदिर नहीं होगा, अस्पताल होगा. अस्पताल जाना हो, तुम्हारी मर्ज़ी! तो कोई स्ट्रेचर में डालकर और एंबुलेंस गाड़ी को बुलाकर ले जाएगा. तुम मुर्दा हो. तुम अर्थी बनकर जाना चाहते हो. चार आदमियों के कंधे पर सवार हो गये, अर्थी बन गये और चले!

एक सूफी फकीर मर रहा था. ठीक मरने के पहले वह उठ खड़ा हुआ अपनी शय्या से और उसने कहा, मेरे जूते कहां

हैं? तो उसके शिष्यों ने कहा, क्या करते हैं आप? चिकित्सक कह रहे हैं कि अब आप बचेंगे नहीं. वे कहते हैं, वह तो मैं भी जानता हूं चिकित्सक के कहने से क्या लेना-देना है! घड़ी मेरी करीब आ रही है, सूरज डूबने को हो रहा है, उसी के साथ मैं डूब जाऊंगा, जूते लाओ जल्दी! पर उन्होंने कहा, अब जूते लाकर करना क्या है, आप विश्राम करें. उसने कहा, अब विश्राम करके क्या करना है? मौत तो आ रही है. और मैं किसी के कंधे पर सवार होकर मरघट नहीं जाना चाहता. जूते ले आओ, मैं मरघट चलता हूं. अपनी कब्र खुद खोदूंगा. अपना जीवन खुद जीया, अपनी मौत भी खुद मरूंगा. उधार नहीं.

अजीब आदमी रहा होगा! वह गया. लोग तो चौंककर देखते रहे, ऐसी घटना तो कभी घटी न थी कि कोई आदमी खुद ही मरघट जा रहा है. मरघट तो लोग दूसरे के सिर पर चढ़कर जाते हैं. सदा से पुरानी आदत है. जीए भी दूसरों के सिर पर चढ़कर, मरते भी दूसरों के सिर पर चढ़कर चले जाते.

वह गया, उसने कुदाली हाथ में ले ली, उसने अपनी कब्र खोदी. और लोगों ने कहा, हम साथ दे दें! उसने कहा कि रुको, मेरे काम में बाधा मत डालो, मैं यह न चाहूंगा कि परमात्मा मुझसे कह सके कि मैंने किसी के कंधे पर किसी तरह की सवारी की. मैं जीवन अपने ढंग से जीया हूं मरूंगा भी अपने ढंग से. उसने अपनी कब्र खोद ली, वह कब्र में लेट गया और उसने कहा कि नमस्कार, मित्रो! आंख बंद कर ली और मर गया. अगर उसका वश होता तो वह कब्र पर मिट्टी भी खुद फेंक लेता.

ऐसा व्यक्ति ही वस्तुतः प्राणवान है. जीयो अपने ढंग से और मरो भी अपने ढंग से. तो तुम्हारे जीवन में बड़ी सुगंध आयेगी. यह भी क्या बात कि पारस छू दे और हम सोना बन जाएं! मिट्टी के लोंदे हो फिर तुम. फिर पारस भी काम न आयेगा. बुद्ध ने कहा है, बुद्धपुरुष केवल मार्ग दिखाते हैं, चलना तो तुम्हीं को पड़ेगा. पहुंचना भी तुमको पड़ेगा. उनके इशारों को समझ लो और चल पड़ो.

पूछते हो कि 'मैं अब भी अतृप्त ही बना हूं.'

शायद यही कारण होगा कि तुम कुछ कर ही नहीं रहे हो. शायद यही कारण होगा कि तुमने मान लिया है कि अब पहुंच गये भगवान के सान्निध्य में, बात खतम हो गयी. अब और क्या करने को है! अब करो तुम. अब हम देखेंगे, क्या करते हो! और बाधा डालेंगे सब तरह की- करने भी न देंगे- करो तुम! सहयोग भी न देंगे, असहयोग भी करेंगे, फिर देखें क्या करते हो? ऐसे भाव से तो यात्रा नहीं होगी, अतृप्ति रहेगी.

तृप्ति चाहते हो - उठो, जागो, चलो. ❑

कमल के फूल पर बैठी करुणा

● जवाहरलाल नेहरू

बचपन से ही बुद्ध का चरित्र मुझे आकर्षित करता रहा है. वह सिद्धार्थ मुझे बहुत अच्छा लगता था जो अनेक आंतरिक संघर्षों एवं पीड़ाओं को भोगने के बाद बुद्ध के रूप में विकसित हुआ. एडमिन अर्नोल्ड की किताब 'लाइट ऑफ एशिया' मेरी पसंदीदा किताबों में से एक थी. बाद के सालों में जब मैं अपने प्रांत में काफी घूमने लगा, मुझे उन जगहों पर जाना बहुत अच्छा लगता था, जो बुद्ध से जुड़े हुए थे. कई बार तो मैं अतिरिक्त चक्कर लगाकर भी ऐसी जगहों पर पहुंचता था. ऐसी बहुत-सी जगहें मेरे प्रांत में या उसके आस-पास हैं. यहां, नेपाल की सीमा पर, बुद्ध का जन्म हुआ था, यहां वे घूमा करते थे, यहां, गया में वे बोधिवृक्ष के नीचे बैठे थे, जहां उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था, यहां उन्होंने अपना पहला उपदेश दिया था, यहां उनका निर्वाण हुआ.

मैं जब उन देशों में गया जहां बौद्ध धर्म आज भी एक ज़िंदा और प्रमुख धर्म है, तो मैं खासतौर पर बौद्ध मंदिरों में जाकर साधुओं से मिला, और उनसे यह जानने की कोशिश की कि बौद्ध-विचारों ने उन पर क्या असर डाला, उनके सोचने के तरीकों और विचारों पर बौद्ध-दर्शन का क्या प्रभाव पड़ा. मैं यह भी जानना चाहता था कि आधुनिक जीवन के बारे में वे क्या

सोचते हैं. बहुत कुछ ऐसा था जो मुझे पसंद नहीं आया. तर्क पर आधारित बुद्ध के विचारों पर बुद्ध के अभौतिक सिद्धांतों और उनके जादू के बावजूद अतार्किकता का बोझा लाद दिया गया है.

बुद्ध की चेतावनी के बावजूद उन्हें देवता बना दिया गया है, मठों और अन्य जगहों पर उनकी बड़ी-बड़ी मूर्तियां लग गयी हैं. मैं जब भी ऐसी मूर्तियों को देखता हूं तो सोचता हूं, बुद्ध यह सब देखकर क्या सोच रहे होंगे. बहुत से साधु तो अज्ञानी हैं, वे आदर चाहते हैं, भले ही वह उन्हें उनके कपड़ों के कारण ही क्यों न हो. हर देश में वहां का राष्ट्रीय चरित्र धर्म पर हावी हो रहा है और धर्म को वहां के रीति-रिवाज़ और जीवन-प्रणाली के अनुसार ढाल लिया गया है. यह सब स्वाभाविक है और शायद अपरिहार्य भी.

पर मैंने ऐसा भी बहुत कुछ देखा जो मुझे अच्छा लगा. कुछ मठों, और उनके साथ जुड़ें स्कूलों, में अध्ययन और मनन का शांतिपूर्ण वातावरण भी है. बहुत से बौद्ध भिक्षुओं के चेहरों पर शांति और स्थिरता दिखाई दी. उनके व्यवहार में एक गरिमा थी, विनम्रता थी, एक तरह का वीतराग और दुनिया की चिंताओं से पलायन था. क्या यह सब आज के जीवन के अनुरूप है या फिर यह एक पलायन है? क्या इसे जीवन के अंतहीन संघर्ष के अनुरूप नहीं बनाया जा सकता और उस हिंसा, अर्जनशीलता और घटियापन को कम करने में इसका उपयोग नहीं हो सकता?

बुद्ध धर्म का निराशावाद जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं है. जीवन और उसकी समस्याओं से पलायन भी मुझे स्वीकार नहीं है. मेरे मस्तिष्क में कहीं मूर्तिपूजा की ग्रंथि है; जीवन और प्रकृति की सुंदरता-प्रचुरता के प्रति एक आकर्षण है. जीवन के संघर्षों-विरोधाभासों से भी मुझे कोई बैर नहीं है. मैंने जो भी अनुभव किया है, जो भी देखा है, भले ही वह कितना ही पीड़ादायक और निराश करने वाला हो, पर जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण की धार को कुंद नहीं कर पाया है.

क्या बौद्धधर्म अक्रियाशील और निराशावादी है? इसे समझाने वाले ऐसा कह सकते हैं, इसके बहुत से अनुयायियों ने भी यह अर्थ निकाला हो सकता है. मैं इसकी गहराइयों और इसके जटिल अभौतिक विकास के बारे में कुछ कहने में सक्षम नहीं हूं. पर जब मैं बुद्ध के बारे में सोचता हूं तो ऐसी कोई भावना मेरे भीतर नहीं जगती, और न ही मैं यह सोच सकता हूं कि निष्क्रियता और निराशावाद पर मुख्यतः आधारित कोई धर्म इतने सारे मनुष्यों पर इतना अधिक प्रभाव डाल सकता है. बौद्ध धर्म को मानने वालों में ऐसे भी अनेक हैं जिन्हें

मानव-जाति के सर्वश्रेष्ठ विचारकों में गिना जा सकता है.

बुद्ध की समूची अवधारणा, जिसे असंख्य लोगों ने बड़ी आस्था और स्नेह के साथ पत्थर, संगमरमर और ताम्बे में घड़ा है, लगता है भारतीय विचार अथवा उसके किसी एक महत्वपूर्ण अंश की प्रतीक है. कमल के फूल पर अवस्थित बुद्ध शांत हैं, मनोवेग से रहित, इस विश्व के तूफानी संघर्षों से परे, इतने दूर लगते हैं कि जैसे उन तक पहुंचा ही नहीं जा सकता. फिर भी, यदि हम उन्हें फिर से देखते हैं तो उन अचल भंगिमाओं के पार एक ऐसा मनोवेग, एक ऐसी भावना दिखाई देती है जो उन मनोवेगों और भावनाओं से कहीं अधिक बलशाली है, जिन्हें हम अबतक जानते हैं. उनकी आंखें बंद हैं, लेकिन उनसे कोई ऐसी ऊर्जा निकलती हैं जो पूरी संचरना को भर-सा देती है. युग बदलते हैं, और बुद्ध उतना दूर नहीं लगते. उनकी आवाज़ हमारे कानों में गूंजती है और कहती है, संघर्ष से भागो नहीं, उसका मुकाबला करो और जीवन में विकास और प्रगति के लिए पहले से अधिक अवसर देखो.

व्यक्तित्व पहले की तरह अब भी महत्वपूर्ण है, बुद्ध ने तो मानवता को इस तरह से प्रभावित किया है कि आज भी उनका विचार जीवंत लगता है. उनके बारे में सोच कर ही एक ऊर्जा मिलती है. निश्चित रूप से वे आश्चर्यजनक व्यक्ति रहे होंगे– एक ऐसा व्यक्ति जो, बार्थ के शब्दों में 'तेजस्विता और शांति का शानदार प्रारूप है, जो सांस लेने वाले हर प्राणी के प्रति अपार करुणा का भाव रखता है, हर पीड़ित के प्रति जिसके मन में प्यार है और जो हर प्रकार के पूर्वग्रहों से पूरी तरह मुक्त है.' ऐसे शानदार व्यक्तित्व को जन्म देने वाला देश और जाति आंतरिक ऊर्जा का अक्षय भंडार है. ❑

चट्टान में कला

'डेविड' इतालवी मूर्तिकार माइकल एन्जेलो की विश्व-प्रसिद्ध कृति है जिसे पुरुष-सौंदर्य की अप्रतिम अभिव्यक्ति माना जाता है. इस अद्‌भुत सौंदर्य के बारे में जब किसी ने जिज्ञासा प्रकट की तो एन्जेलो ने कहा था 'मैंने तो बस एक चट्टान में से वह सब हिस्सा निकाल दिया जो डेविड नहीं था.' इसी क्रिया को सृजन का मार्ग माना गया है– चट्टान में से वह सब हटा देना जो 'डेविड' नहीं है! इसी 'डेविड' को कला कहते हैं.

बोधि-सत्व

● नंद भारद्वाज

पार्श्व स्वर : बात उस समय की है जब ईसा पूर्व की छठी शताब्दी में हिमालय की तराई के नगर कपिलवस्तु में शाक्यवंशी राजा शुद्धोधन राज्य किया करते थे. उनके राज्य में यों तो प्रजा सुखी और संतुष्ट दिखाई देती थी, लेकिन पौराणिक वैदिक धर्म के कर्मकांड और जीवन की विभिन्न व्याधियों के कारण मनुष्य के दैनिक जीवन में आनंद और आत्म-संतोष का घोर अभाव था. महाराज शुद्धोधन के पुत्र सिद्धार्थ बचपन से ही अत्यंत संवेदनशील और कोमल प्रकृति के बालक थे. उन्हें मनुष्य के जीवन में व्याप्त इस असंतोष का गहरा अहसास था और वे बचपन से ही राजमहल का सुख वैभव भूलकर इन सांसारिक कष्टों के कारण चिंतित रहते थे. महाराजा शुद्धोधन ने उनकी चिंतनधारा और मानवीय चिंताओं से ध्यान हटाने के लिए कई तरह के उपाय किये– युवावस्था में प्रवेश करते ही उनका रूपवती और सुशील राजकुमारी यशोधरा के साथ विवाह कर दिया गया, उन्हें सुख और आनंद प्रदान करने के लिए राजमहल में प्रतिदिन मनोहारी रंगशालाओं का आयोजन किया जाता, जिससे समूचा राजमहल संगीत की स्वर-लहरियों में झूमता रहता—

(पर्दे के पीछे से संगीत की स्वर-लहरियां धीरे-धीरे उभरने लगती हैं और फिर मंद पड़ जाती हैं–)

पार्श्व स्वर : परंतु युवराज सिद्धार्थ पर इन आयोजनों और संगीतमय वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वे और अधिक उद्विग्न और बेचैन रहने लगे– रंगशाला के राग-रंग को बीच ही में छोड़कर वे पुन: अपने कक्ष में लौट आये–

(पार्श्व-स्वर के अंतिम वाक्य के दौरान ही धीरे-धीरे पर्दा खुलता है और युवराज सिद्धार्थ अपने कक्ष में बेचैनी से एक कोने से दूसरे कोने तक चहलकदमी करते नज़र आते हैं. इसी दौरान कुछ क्षण पश्चात बायीं विंग से उनके बाल-सखा यज्ञदेव प्रवेश करते हैं और युवराज से पूछते हैं–)

यज्ञदेव : क्या हुआ कुमार! आज आप रंगशाला को बीच ही में छोड़कर इस तरह क्यों लौट आये? क्या आपको राग-रंग रास नहीं आया?

सिद्धार्थ : हां देव, मुझे यह राग-रंग तनिक भी रास नहीं आता– कुछ भी अच्छा

नहीं लगता मुझे... आप मेरे अंतरंग सखा हैं, इसलिए आपको अपने मन के भाव प्रकट करने में संकोच नहीं है... न जाने कौन-सी चिंता मेरे मानस को भीतर ही भीतर व्यथित किये रहती है, जिसे मैं ठीक से व्यक्त भी नहीं कर पाता...

यज्ञदेव : चिंता न करें युवराज, आप जल्दी ही सहज अनुभव करेंगे, अगर आपको यह गायन रुचिकर न लगा हो तो कोई बात नहीं, आप देविका के नृत्य का अवलोकन करें, वे तो हमारे राज्य की सबसे कुशल नृत्यांगना हैं...

सिद्धार्थ : नहीं देव, मेरी इस नृत्य या संगीत में कोई रुचि नहीं है, मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा... कुछ मत पूछिये मुझसे, बस मुझे एकांत चाहिए... सिर्फ एकांत... और हो सके तो सारथि कौशल को भेज दीजिये मेरे कक्ष में...

यज्ञदेव : जैसी आपकी इच्छा कुमार! मैं सारथी को अभी भिजवाता हूं.

(कुमार यज्ञदेव सिर झुकाकर अभिवादन करते हुए दायीं विंग से निकल जाते हैं, और युवराज सिद्धार्थ फिर अपने कक्ष में चहलकदमी करने लगते हैं. वे अब भी गहन चिंता में हैं. कुछ क्षण बाद सारथि कौशल उसी विंग से मंच पर प्रवेश करता है-)

सारथी : (युवराज का अभिवादन करते हुए) प्रणाम युवराज! मेरे लिए क्या आज्ञा है देव!

सिद्धार्थ : आओ सारथी कौशल! क्या हमारा रथ तैयार है? मैं कुछ समय के लिए नगर के मुख्य मार्गों पर भ्रमण करके आना चाहता हूं!

सारथी : अवश्य युवराज! रथ आपकी सेवा में तैयार है, आप अवश्य पधारें!

(युवराज सिद्धार्थ उसी चिंतित मनोदशा में दायीं विंग से बाहर की ओर प्रस्थान करते हैं और सारथी कौशल करबद्ध उनका अनुगमन करता है. पार्श्व संगीत के साथ

मंच पर कुछ क्षण अंधेरा होता है और पार्श्व स्वर उभरता है–)

पार्श्व स्वर : राजसी वैभव, राग-रंग, सुंदर सुशील जीवन-संगिनी और नवजात सुकुमार राहुल सरीखे पुत्ररत्न के बावजूद युवराज सिद्धार्थ का चित्त उतना ही अशांत बना रहता, वे अक्सर नगर के उद्यानों और वीथिकाओं में भटकते रहते, पर कहीं चैन नहीं पाते. महाराज शुद्धोधन इस बात का विशेष ध्यान रखते कि सिद्धार्थ जीवन की व्याधियों और प्रजा की पीड़ाओं से दूर रहें, परंतु आज वे अपने विश्वस्त सारथी कौशल के साथ नगर के आम मार्गों और जीवन की वास्तविकताओं के बीच पहुंच ही गये...

(मंच पर पुन: प्रकाश होता है और सारथी कौशल के साथ युवराज सिद्धार्थ अपने रथ पर सवार मंथर गति से चलते हुए दिखाई देते हैं. युवराज अपने सारथी से बातचीत करते हुए उससे विशेष आग्रह करते हैं–)

सिद्धार्थ : रथी कौशल, तुम मेरे सारथी ही नहीं, मेरे बचपन के सखा भी हो, तुम गुणवान हो और जीवन की वास्तविकताओं से अच्छी तरह परिचित भी, तुम्हें साथ लेकर आज पहली बार मैं अपने नगर के मुख्य मार्गों पर आया हूं, इसलिए मुझे तुमसे एक विशेष आग्रह करना है–

सारथी : आप आज्ञा करें युवराज, आपके आदेश का पालन तो मेरा परम कर्तव्य है–

सिद्धार्थ : वह बात ठीक है कौशल, मेरा बस इतना ही आग्रह है कि आज जिस किसी वास्तविकता से मेरा साक्षात्कार हो उसके बारे में तुम निस्संकोच होकर मेरे प्रश्नों के सही उत्तर देना, मुझसे कोई बात छुपाना नहीं–

सारथी : *(थोड़ी चिंता के साथ झिझकते हुए)* जी... जी, युवराज, ऐसा ही होगा, आश्वस्त रहें...

(इसी बातचीत के बीच रथ आगे बढ़ता है. कुछ क्षण बाद बायीं विंग से एक वृद्ध पुरुष का प्रवेश होता है और युवराज रथ रोक देने का संकेत करते हैं. इस बीच वृद्ध अपनी लाठी के सहारे धीरे-धीरे चलता हुआ, दूसरी विंग की ओर प्रस्थान करता है. युवराज उसे करीब से गुजरते हुए आश्चर्य से देखते रहते हैं. वृद्ध के निकल जाने के बाद वे सारथी से पूछते हैं–)

सिद्धार्थ : ये मानव आकृति कौन थी कौशल?

सारथी : युवराज! ये एक वृद्ध पुरुष थे, जो अब अपने जीवन के अंतिम चरण में पहुंच गये हैं और वृद्धावस्था के कारण सामान्य गति से चल नहीं पा रहे हैं.

सिद्धार्थ : क्या प्रत्येक मनुष्य को इस अवस्था से होकर गुजरना होता है कौशल?

सारथी : हां युवराज, मनुष्य जीवन की यह एक सहज अवस्था है, जिससे

प्रत्येक प्राणी को गुजरना ही होता है.

सिद्धार्थ : तो क्या मुझे भी जीवन की इस अवस्था से होकर इसी तरह गुजरना होगा?

सारथी : *(हल्की-सी झिझक के साथ)* ऐसा सम्भव है युवराज! पर हमारी कामना है कि आप दीर्घायु प्राप्त करें.

सिद्धार्थ : अरे नहीं कौशल! ऐसी कामना तो भय उत्पन्न करती है.

(युवराज के इस कथन पर हल्का-सा पार्श्व संगीत उभरता है और सारथी कौशल सिर झुकाकर रथ को आगे बढ़ाता है. मंच का डेढ़ चक्र पूरा होते होते सिद्धार्थ फिर रथ को रोकने का संकेत करते हैं और तभी विंग से एक रुग्ण व्यक्ति पेट के बल घिसटता हुआ दूसरी विंग की ओर बढ़ता है. सिद्धार्थ उसे देखते हुए रथ से उतर कर उसकी सहायता के लिए बढ़ते हैं, लेकिन तभी सारथी कौशल उनके करीब आकर उन्हें ऐसा करने से रोक देता है–)

सारथी : नहीं युवराज! इसे मत छुइये, यह रोगी है.

(सिद्धार्थ उसे चिंता और आश्चर्य से देखते हैं और वह उसी तरह घिसटते हुए दूसरी विंग की ओर निकल जाता है.)

सिद्धार्थ : परंतु इसे क्या व्याधि है रथी कौशल? इसकी ऐसी दशा क्यों हो गयी?

सारथी : इस अभागे को कोढ़ का रोग हो गया है युवराज! यह एक भयानक व्याधि है और शायद मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप...

सिद्धार्थ : नहीं कौशल, इसमें भाग्य का क्या दोष? पर क्या यह रोग किसी भी व्यक्ति को हो सकता है?

सारथी : भाग्य न सही, आप इसे संयोग कह लें युवराज! लेकिन यह सच है कि मनुष्य का जीवन कई तरह के रोगों और व्याधियों से परिपूर्ण होता है, संसार में ऐसा व्यक्ति मिलना असम्भव है, जिसे जीवन में कोई रोग न हुआ हो, जिसे कभी किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक क्लेश न हुआ हो!

सिद्धार्थ : इसका तात्पर्य है कि मुझे भी किसी दिन ऐसे ही किसी रोग का शिकार होना पड़ सकता है.

सारथी : *(अपनी भूल का अहसास करते हुए सिर झुकाकर)* मुझे क्षमा करें युवराज! भगवान न करे आपके साथ ऐसा कभी हो–

सिद्धार्थ : ओह!

(और इस अहसास के साथ सिद्धार्थ जैसे एकाएक विचलित से हो उठते हैं. पार्श्व संगीत उभरता है और वे दोनों फिर से रथ की ओर बढ़ते हैं. रथ में सवार होने के बाद दोनों फिर लयबद्ध ढंग से आगे बढ़ते हैं. मंच का डेढ़ चक्र पूरा करने के बाद एकाएक सिद्धार्थ हाथ के संकेत से रथ रोकने का आदेश देते हैं. मंच के पिछले भाग की विंग से कुछ लोग अपने

कंधों पर एक अर्थी को उठाये उनके करीब से गुजरते हैं. सारथी कौशल अर्थी को देखकर हाथ जोड़ लेता है, शवयात्रा के लोग गति से चलते हुए दूसरी विंग की ओर निकल जाते हैं. सिद्धार्थ आश्चर्य और विस्फारित नेत्रों से इस दृश्य को देखते हैं और उनके गुजर जाने के बाद सारथी से पूछते हैं–)

सिद्धार्थ : यह सब क्या था सारथी कौशल?

सारथी : यह एक व्यक्ति की शवयात्रा थी युवराज! मनुष्य जीवन की अंतिम यात्रा! प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन व्यतीत कर एक दिन इस असार संसार से परलोक सिधार जाता है और तब उसके परिजन और मित्र-बंधु इसी तरह अर्थी सजाकर उसे अंतिम संस्कार के लिए श्मशान घाट ले जाते हैं.

सिद्धार्थ : तो क्या मृत्यु प्रत्येक मनुष्य की अनिवार्य नियति है?

सारथी : मृत्यु राजा और रंक में कोई भेद नहीं करती युवराज! प्रत्येक मनुष्य को एक-न-एक दिन इस संसार से अंतिम विदाई लेनी ही होती है, यह प्रकृति का शाश्वत नियम है.

सिद्धार्थ : *(स्वगत)* इसका तात्पर्य है कि एक दिन मैं भी... ओह...

(सारथी कौशल एकाएक अपना सिर झुका लेता है. यह मानसिक आघात युवराज सिद्धार्थ को जैसे बेचैन कर देता है और वे आंखें बंद कर दोनों हाथों से अपना सिर पकड़ लेते हैं. पार्श्व संगीत एकाएक तेज हो उठता है और धीरे-धीरे मानसिक तनाव में कमी के साथ वे फिर से सामान्य अवस्था में लौट आते हैं. रथ फिर लयबद्ध गति से धीरे-धीरे आगे बढ़ता है. अभी एक चक्र पूरा होता ही है कि तभी दायीं विंग से भगवा वस्त्रधारी एक साधु हाथों में खड़ताल और कमंडल लिये मस्ती में झूमता-गाता प्रवेश करता है और दूसरी विंग की ओर निकल जाता है. सिद्धार्थ आश्चर्य और कौतुहल के भाव से उसे देखते रहने के बाद सारथी से पूछते हैं–)

सिद्धार्थ : ये भाग्यशाली व्यक्ति कौन था कौशल, जो इतना सुखी और संतुष्ट है– क्या इसे जीवन में किसी तरह का कोई कष्ट नहीं?

सारथी : सो बात नहीं है युवराज! हां, यह एक वैरागी साधु था, जिसने अपनी समस्त इच्छाओं और कामनाओं को वश में कर लिया है. इसीलिए यह सुख और दुख को समान भाव से ग्रहण करता है– यह कष्टों और व्याधियों से विचलित नहीं होता, लेकिन उसका यह सुख और संतोष अपने तक ही सीमित है. जब तक यह अपने अनुभव और ज्ञान को व्यापक जन-कल्याण के लिए अर्पित नहीं करता, इसकी यह साधना अधूरी है.

सिद्धार्थ : वाह कौशल, तुम्हारे इसी अनुभव और साफगोई का मैं कायल हूं.

मेरी इतनी-सी जिज्ञासा और है कि इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए क्या करना पड़ता है?

सारथी : यह मार्ग बहुत जटिल और कठिन है युवराज! इसके लिए व्यक्ति को बहुत त्याग करना पड़ता है, सारी सुख-सुविधाओं से विमुख होना पड़ता है. पर यह आपके विचार का विषय नहीं है युवराज! एक अच्छा राजा ऐसे गुणी व्यक्तियों के माध्यम से अपनी प्रजा में अच्छे संस्कार और सुख-शांति विकसित कर सकता है.

(सारथी कौशल के अंतिम शब्द बोलने तक पार्श्व संगीत तेज हो उठता है और स्वयं सिद्धार्थ भी अपनी ही स्मृतियों में खो जाता है. अपने गहन चिंतन में डूबे वे सारथी को रथ वापस राजमहल की ओर ले चलने का आदेश देते हैं. मंच पर धीरे-धीरे अंधेरा छाने लगता है. और उसी क्रम में पार्श्व स्वर उभरता है–)

पार्श्व स्वर : और उसी रात युवराज सिद्धार्थ ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि वे आनंद की इस परम अवस्था को अवश्य प्राप्त करेंगे, जिसके सामने उनका यह राजसी वैभव और सुख सुविधाएं कुछ भी नहीं हैं. भले उसके लिए उन्हें पारिवारिक जीवन का त्याग करना पड़े, कितने शारीरिक और मानसिक कष्ट झेलने पड़ें, वे प्रकृति की गोद में छिपे इस परम सत्य को अवश्य खोज लायेंगे, केवल अपने लिए ही नहीं समूची मानवता के लिए! और उसी रात वे अपनी पत्नी यशोधरा, नवजात शिशु राहुल और समस्त राजसी वैभव का परित्याग कर संन्यास के कठिन मार्ग पर निकल पड़े. उस परम सत्य और आनंद की खोज में उन्होंने सात वर्षों तक आत्मपीड़न, शारीरिक अनुशासन और कई कई दिनों तक निराहार रहते हुए कठोर तपस्या की. इसी तपस्या के दौरान एक दिन बोधिवृक्ष के तले उन्हें यह आत्मज्ञान हुआ कि दुख और तृष्णा ही जीवन का मूल तथ्य है, इसी भौतिक जीवन-जगत में रहते हुए उन सभी दुखों और व्याधियों से छुटकारा पाना सम्भव है. उनके मन-मस्तिष्क में एक नये ज्ञान का उदय हुआ और इसी ज्ञानमय अवस्था में पहुंचकर वे महात्मा गौतम बुद्ध कहलाए. इसी आत्मचिंतन से उन्होंने चार महान् सत्यों और आठ सम्यक मार्गों के माध्यम से जिस बुद्धत्व और मध्यम मार्ग को अर्जित किया, वही कालांतर में बौद्ध धर्म के रूप में विकसित हुआ. इसी बोधिसत्व का अनुसरण करते हुए उनके हजारों, लाखों और करोड़ों अनुयायी उन्हीं के बताये रास्ते पर चल पड़े– भारत भूमि से उपजा महात्मा बुद्ध का यह महामंत्र शताब्दियों तक मध्य एशिया की हवाओं में अनवरत गूंजता रहा–
'बुद्धं शरणम् गच्छामि!

धम्मं शरणम् गच्छामि!! संघं शरणम् गच्छाामि!!!' ❑

तू तो दिल्ली जा

● **बलराम**

कमला ने सत्य प्रकाश पर अचूक तीर चलाया था और उसका वार खाली नहीं गया. तीर निशाने पर बैठकर सत्य प्रकाश के जीवन-जगत को तहस-नहस कर गया. एक तीर से उसने कई शिकार कर उसे चारों खाने चित्त कर दिया. सब लोग जानते हैं कि उसका क्लासमेट रहा रघुनंदन अब डॉक्टर है. कमला के इस आरोप को बड़े भैया अजय प्रकाश ने ही नहीं, सब ने सही मान लिया कि सत्य प्रकाश के कहने पर डॉक्टर ने ज़हर का इंजेक्शन देकर बड़की भाभी को मार दिया, वरना ऐसे कैसे पल में प्रलय हो जाती. कहां तो दोपहर की ट्रेन से बड़े भैया उन्हें लेकर गांव लौटने वाले थे और कहां उनकी मिट्टी को फूंक-ताप कर खाली हाथ लौटे. यह अनहोनी पलक झपकते इस तरह कैसे हो गयी, घर-परिवार और गांव-जवार के सब लोग सुनकर अवाक् रह गये, हतप्रभ. मन में चाहे जिसने जो भी सोचा, पर सत्य प्रकाश पर ऐसा शक किसी ने भी नहीं किया था, लेकिन अब तो अपनों और गैरों, सबके मन में संदेह का कीड़ा कुलबुलाने लगा होगा कि हो न हो, बड़की अपनी मौत न मरी हों, उनकी हत्या हुई हो और यह कुकर्म सत्य प्रकाश ने करवाया हो, क्योंकि बचपन में बड़की उसे अपने घर रखने के लिए एकदम तैयार न थीं. सत्य प्रकाश और बड़की के बीच नफरत की वह खाई कभी पाटी न जा सकी और मौका मिलते ही सत्य प्रकाश ने उसे रास्ते से हटा दिया.

गांव-घर के लोग अच्छी तरह समझते हैं कि पति की मजबूरी समझकर बड़की उसे अपने घर रखने के लिए मान तो गयी थीं, लेकिन उन्होंने सत्य प्रकाश को सहज रूप से स्वीकार नहीं किया, लेकिन दादी के चलते उनके जीते जी उस घर में उसकी जड़ें जम गयीं और वह उसे ही अपना घर समझने लगा. पांच बरस उस गांव-घर में रहते, वहां का आसमान उसे अपना लगने लगा था, लेकिन भाभी का वैर-भाव नहीं गया तो फिर नहीं ही गया. घर के बेगानेपन को उसने बाहर मिलते रहे अपनेपन से किसी हद तक भले ही दूर कर लिया था, लेकिन जैसे ही मौका मिला, वह वहां से भाग निकला और अम्मा के पास पहुंच गया और फिर तभी लौटा, जब बड़की

भाभी ने खुद कहा, 'लौट भी आ यार, अबकी बार मेरे कहने पर आ, हमें तेरी ज़रूरत है.' सुनकर हुलसता हुआ लौट आया था वह भाभी के पास, लेकिन कमला की चिट्ठी के इस पांसे का कोई जवाब नहीं है उसके पास. कमला की चिट्ठी से बही हवा जनमत को अब एकमत कर देगी कि भाभी का हत्यारा है सत्य प्रकाश और मंजरी से प्रेम के चक्कर में पत्नी को भी राह के कांटे की तरह हटा देने वाला था. चालाकी से कमला ने ऐसा अंधड़ चला दिया, जिसमें सत्य प्रकाश का जीवन और जगत तहस-नहस हो गया. कमला के माता-पिता ने तो आसानी से सब कुछ सच मान लिया होगा. तभी तो उन्होंने तलाक करवा देने का निर्णय ले लिया.

कमला को इतनी आसानी से सब करवा लेने की राह पर बढ़ा दिया था चंदू के हंसी-मजाक ने. उसके मजाक ने देखो तो कैसे तिल का ताड़ और कण का पहाड़ खड़ा कर दिया. मंजरी और उसके बीच समझदारी विकसित ज़रूर हो गयी थी, पर उसे प्यार नहीं कह सकते. प्यार तो वह किसी और से करती थी और शादी भी उसी से करना चाहती थी, पर चाचा का इरादा उसकी शादी किसी और से कर देने का था. जात-पांत का लफड़ा भी तो है. इसके अलावा वह कमला का पति है, मंजरी से शादी की बात तो सपने में भी नहीं सोच सकता. हालांकि पहली रात ही कमला से सम्बंध क्षत-विक्षत हो गया था, मगर प्यार वह उसे अब भी उतना ही करता है, क्योंकि कमला उसकी कामना है, उसकी भावना, उसकी पत्नी और उसकी ज़िंदगी का आधार. उसके हटते ही उसकी ज़िंदगी की नींव ही हिल जायेगी, आम हिंदुस्तानी की तरह सत्य प्रकाश ऐसा सोचता है. एक बार को विवाह हो जाने के बाद अब प्रेमिका है तो कमला, प्रियतमा है तो कमला, पत्नी है तो कमला, शादी के बाद कमला उसकी कविता है, कमला ही कहानी और कमला ही अब उसके कर्म-धर्म की धुरी है, कमला ही उसकी यह, कमला ही उसकी वो, मतलब ये कि अब जो कुछ है, सब कुछ कमला में ही है. कमला है तो वह है, कमला नहीं तो वह भी नहीं. कमला के साथ ही वह सही-सलामत रहेगा, उसके अलावा अब वह किसी और का नहीं हो सकता, न ही कोई और उसका हो सकता है, लेकिन अपनी इन भावनाओं को कमला से एक पल भी कहां साझा कर सका वह. कमला ने धीरे-धीरे सब कुछ खत्म कर दिया. एक-एक कर उसके सारे भ्रम तोड़ दिये और अब बड़े के पास आयी उसकी चिट्ठी जन-जन तक पहुंच गयी. उफ्फ! सत्य प्रकाश ने दीर्घ सांस छोड़ी और अतीत में खो गया.

जामगांव से चंद्र प्रकाश आया था. कई दिन रुका और कमला से घुल-मिल गया. कमला उन दिनों श्यामगंज में ही

थी. सत्य प्रकाश भी रोज कानपुर से गांव आ जाता. इतवार का दिन था और सब लोग आंगन में बैठे बतिया रहे थे कि हर चौथे दिन कमला के मायके चले जाने का प्रसंग छिड़ गया और प्रसंगवश ही चंद्र प्रकाश के मुंह से अनायास निकल गया, 'कमला भाभी, रोज-रोज मायके भागोगी तो किसी दिन सत्ती भैया दिल्ली चले जाएंगे, मंजरी के पास.'

'मंजरी! कौन मंजरी?' कमला के कान खड़े हो गये.

'अरे वही, जिसके साथ सत्ती ने जामनगर आकर सोशल वर्क किया था.'

'अच्छाऽऽऽ.' कमला ने आश्चर्य से कहा, मानो कोई बहुत बड़ा रहस्य उजागर हो गया. चंद्र प्रकाश ने आगे और भी जड़ दिया, 'उसने सत्ती भैया से गर्मियों की

छुट्टियों में दिल्ली आकर सोशल वर्क करने को कहा है. इनसे लड़-झगड़कर उन दिनों आप मायके चली गयी थीं. इसीलिए कहता हूं कि सत्ती भैया को बांधकर रखो, वरना फिर मत कहना कि चंदू लाला, सब कुछ जानते-बूझते भी आपने हमें बताया तक नहीं.' चंद्र प्रकाश यह सब एक सांस में कह गया, मानो हमारे हित में उसने कोई बड़ा तीर मार लिया.

हंसी-मज़ाक में कही चंद्र प्रकाश की यह बात कमला ने सुनी थी और घर की सब औरतों ने भी. औरतों से होती हुई बात भाइयों तक पहुंची और आज जिस रूप में बड़े-बूढ़ों तक पहुंची है, सत्य प्रकाश के लिए अकल्पनीय है. कमला ने किस चतुराई से उस बात का इस्तेमाल कर लिया. उस मज़ाक का ऐसा दुरुपयोग हो सकता है, जानता तो भूलकर भी न करता चंद्र प्रकाश.

'चंद्र प्रकाश! कौन चंद्र प्रकाश?' चौपाल में ज़िक्र आने पर सभापति काका ने पूछा था.

'अरे वही, सिपाही नाना का पोता, जिसके साथ बचपन में सत्ती खेलते-कूदते थे. बहन के लिए लड़का देखने आया था श्यामगंज.' मंझले भैया ने सभापति काका को बताया, 'सत्ती को सत्य प्रकाश और चंदू को चंद्र प्रकाश नाम सिपाही नाना ने ही तो दिया है.'

'अच्छा-अच्छा, सत्ती के बचपन का

यार है चंद्र प्रकाश.' सभापति काका ने साश्चर्य कहा था और आज वही सभापति काका मंजरी प्रसंग को आरोप के साथ जान गये हैं. न जाने किस अर्थ में ले रहे होंगे. आधे-अधूरे प्रसंग से सभापति काका तो क्या, कोई भी कैसा भी अर्थ-अनर्थ निकाल सकता है. मंजरी प्रसंग को सही रूप में किसी को समझाया भी तो नहीं जा सकता. वह बेचारी तो अपने गांव-घर की भाव धारा में बहती चली आयी थी जामगांव, सोशल वर्क का अपना प्रोजेक्ट पूरा करने, लेकिन चाचा ने कहां कुछ करने दिया उसको. मंजरी की मोहक छवि और निर्मल मन को याद करते हुए सत्य प्रकाश विषाद के कुएं से बाहर निकल आया, जहां निस्पंद ढहा पड़ा था. उठकर रामलाल के बगीचे में आ गया.

बगीचे में पहुंचकर सत्य प्रकाश सहज हुआ, सहज से सहजतर होने में कुएं के आसपास खिले फूलों और उनकी मनभावन महक ने उसकी मदद की. कुएं की जगत के पास एक झिलंगी खाट थी, बिना बिछी, जिस पर लेटते ही ठंडी बयार के झोंके उसे चिर-परिचित सुकून दे गये, किशोरावस्था का जाना-पहचाना सुकून, जब वह रामलाल के साथ बैठकर यहीं पढ़ा-लिखा करता था. अब तो खैर रामलाल एयरफोर्स में है और अर्से से उनकी भेंट ही नहीं हो पायी, लेकिन वह उसका सबसे प्यारा दोस्त था, लंगोटिया यार. पांव पसारकर सत्य प्रकाश खाट पर लेटा तो मंजरी की यादों ने उसे फिर से गिरफ्त में ले लिया.

अंतरंग होकर काफी कुछ समझने लगा था मंजरी को सत्य प्रकाश. वह एक प्यारी लड़की थी, प्यारी और समझदार. उसके और मंजरी के बीच जुड़ाव का सूत्र बन गया था जामगांव. दोनों ही उसी गांव में पैदा हुए और फिर जन्मभूमि से जुदा हो गये. संयोग से दोनों एक ही समय जामगांव पहुंच गये. पहुंच ही नहीं गये, टकरा भी गये. उसी टकराहट ने उनमें मैत्री भाव पनपा दिया था.

मंजरी के संग-साथ बीता महीने भर का वह समय रह-रहकर याद आता है सत्य प्रकाश को. उसके गहन सान्निध्य में ही उसने जाना कि स्त्री-पुरुष के बीच चिर-परिचित रिश्तों के अलावा एक और रिश्ता हो सकता है, मैत्री का, प्यारा और हमदर्द. उस रिश्ते के लिए भी हुड़कता है सत्य प्रकाश. कोई भी रिश्ता पूरी तरह वह कभी जी ही कहां सका. हवा का कोई झोंका आता है और किसी भी रिश्ते को उड़ाकर ले जाता है, जैसे उस दिन मंजरी से जुड़े रिश्ते को भी उड़ा ले गया.

'किस उधेड़बुन में हो सत्ती?' सभापति काका की आवाज़ से सत्य प्रकाश चौंक गया और चारपाई से उठ खड़ा हुआ. तब तक सभापति काका उसके एकदम करीब आ गये. हड़बड़ाहट में वह कुछ बोल ही

न सका तो चारपाई पर बैठते हुए उन्होंने उससे पूछा, 'तो तुम दिल्ली जा रहे हो?' सत्य प्रकाश हतप्रभ, मानो रंगे हाथ पकड़ा गया. उसकी समझ में नहीं आया कि सभापति काका कैसे जान गये कि लेटा-लेटा वह दिल्ली जा चुकी मंजरी के बारे में ही सोच रहा है.

'नहीं काका, अभी तो ऐसी कोई योजना नहीं.'

'अभी नहीं तो कभी नहीं.' कहकर सभापति काका ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'यह समय पड़े-पड़े सोचने का नहीं, कुछ करने का है सत्ती बेटे, तुम गांव में हम लोगों के पास रहते तो हमें बहुत अच्छा लगता. कानपुर में ढंग की नौकरी पा जाते तो उससे भी ज़्यादा अच्छा रहता, लेकिन इन हालात में इससे अच्छा कुछ नहीं कि फिर अपनों से दूर सपनों के शहर दिल्ली चले जाओ.'

'क्यों काका, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?'

'इसलिए बेटे, कि यहां अब कोई तुम्हारा नहीं है.'

'क्यों काका, मैंने ऐसा क्या कर दिया कि अपनों के बीच इस तरह पराया हो गया. इस एक दिन में ही ऐसा क्या हो गया कि कोई भी हमारा न रहा और हम किसी के भी न रह गये.'

'तुमने कुछ किया, नहीं किया, लेकिन हत्या का आरोप तो तुम्हारे सिर तुम्हारी ही पत्नी ने मढ़ दिया, जिसे लोगों ने सच मान लिया, जिसे मिटाना आसान नहीं. यह कलंक अब हवा की तरह फैलेगा और कोई इसे रोक नहीं पायेगा.'

'चला तो जाऊं काका, मगर किसके भरोसे?' सत्य प्रकाश ने पूछा. सभापति काका खाट पर कोहनी टिकाकर अधलेटे ही बोले– 'मंजरी शायद तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है.'

'नहीं काका, मंजरी से मेरा सम्बंध वैसा नहीं, जैसा लोग समझ रहे हैं. कम से कम आप तो मेरे कहे पर यकीन कर लें.'

'बात मेरे यकीन की नहीं है बेटे, चाहकर भी मैं तुम्हें इस समय बचा नहीं पाऊंगा. बाद में भले ही लोग तुम्हारी पूजा करें, लेकिन इस समय तो जिधर जाओगे, नफरत ही पाओगे.' कहकर काका चल दिये तो सत्य प्रकाश ने विनती-सी की, 'मेरी बात पर भरोसा करो काका, मुझे बचा लो.'

'इस समय खुद को बेगुनाह साबित करने के चक्कर में मत पड़, बात मान, घर आ, काकी से पैसे ले और गोली मार गांव-घर को. तू तो दिल्ली जा. खुद को बचा. बचा रहेगा तो एक दिन सब ठीक कर लेगा. तेरे मूरख भाई नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं, लेकिन हम जानते हैं कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं और कमला को तो तू भूल ही जा बेटे. उसने यह खेल क्यों खेला, हमें नहीं पता, लेकिन तुझे सब पता

होगा, पर किसी को बता नहीं पायेगा तू. तुझ पर मुझे भरोसा है मेरे बच्चे, पूरा भरोसा है. मैं तुझे बचपन से जानता हूं. जो चींटी तक को नहीं मार सकता, भाभी को कैसे जहर का इंजेक्शन लगवा देगा, लेकिन आज मैं तुझे नहीं बचा सका, कल भी नहीं बचा सकूंगा. इसीलिए कह रहा हूं कि तेरे लिए इस नरक से भाग जाना ही अच्छा है. मेरी मान और दिल्ली जा.' कहकर काका चले गये तो सत्य प्रकाश के सामने उभर आया था बीस बरस पहले का वह मंजर, जैसे कल की बात हो.

इस समय खुद को बेगुनाह साबित करने के चक्कर में मत पड़, बात मान, घर आ, काकी से पैसे ले और गोली मार गांव-घर को. तू तो दिल्ली जा. खुद को बचा. बचा रहेगा तो एक दिन सब ठीक कर लेगा.

भैंसा जुती गाड़ी चल पड़ी. अपने-अपने दरवाजे खड़े श्यामगंज के लोग देख रहे हैं– भैंसा गाड़ी को हांकते अजय प्रकाश और उस पर बैठा सत्ती, जो अभी छह बरस का भी नहीं है और अजय प्रकाश छब्बीस बरस के भी नहीं हैं, लेकिन तीन बच्चों के बाप बन चुके हैं, लेकिन आज एक नयी भूमिका में उतार दिये गये हैं, सत्ती के गार्जियन की भूमिका में. बप्पा ने आज उन पर चौथे बच्चे का दायित्व भी डाल दिया है, जो कहने को तो उनका छोटा भाई है, लेकिन उनके बड़े भाई से सिर्फ एक बरस बड़ा. वह उनका भाई ज़रूर है, पर उनकी मां ने उसे जना नहीं. मां के मरने के बाद पिता की दूसरी पत्नी ने उसे जना, जो लाड़-प्यार में बिगड़ गया, जिसे ठीक करने के लिए अजय प्रकाश सक्षम समझ लिये गये. वह भी बिना उनसे पूछे. गाड़ी में बिठाकर अजय प्रकाश उसे गोपालपुर ले जा रहे हैं. ठीक इसी उमर में एक दिन जैसे बप्पा की बुआ अजय प्रकाश को यहां से ले गयी थीं और उनसे छूट गया था उनका गांव-घर और उनके सगे-सम्बंधी, जिनके बीच वे पल-बढ़ रहे थे. उसी तरह सत्ती से भी सब छूट गया था, उसका गांव-घर.

अजय प्रकाश के गोपालपुर जाने की भूमिका महीनों पहले बनी थी और दादी आकर कुछ दिन अजय प्रकाश के साथ रही थीं. जब वे उनसे घुल-मिल गये तो एक दिन उन्हें लेकर वे गोपालपुर चली आयीं. उसके बाद गोपालपुर ही अजय प्रकाश का गांव-घर हो गया और धीरे-धीरे वे श्यामगंज को भूल गये, सिर्फ पिता याद रहे, जो अक्सर उनसे मिलने आ जाया करते और खेती-बाड़ी की देखभाल भी कर जाया करते, लेकिन उस दिन सत्ती अचानक उन्हें सौंप दिया गया, इस हिदायत के साथ कि पढ़ा-लिखाकर इसे ठीक करना तुम्हारा काम है. यह काम अजय प्रकाश करना चाहते भी थे या नहीं, पूछने की

ज़रूरत नहीं समझी बप्पा ने. ऐसा कर देने में कोई बड़ी बाधा थी भी नहीं, इसलिए अजय प्रकाश ने बिना किसी ना-नुकुर के बप्पा की इच्छा और आदेश को सिर-माथे धर लिया. ऐसा करके वे पिता की नज़रों में कुछ और बड़े तो हुए ही, गांव-जवार में आज्ञाकारी पुत्र माने जाकर राम जी की तरह गणमान्य भी हो गये. लोग उनका उदाहरण देते हुए कहते कि बेटा हो तो अजय प्रकाश जैसा, जिसने बिगड़ैल भाई को काबू कर पिता की समस्या चुटकी बजाते हल कर दी.

गाड़ी गांव के मुहाने पर पहुंचने को थी. अजय प्रकाश गाड़ी के अगले हिस्से में और सत्ती उनके पीछे बैठा था, सिर झुकाये. गाड़ी के पीछे-पीछे अम्मा थीं, रोती-बिलखती. सभापति काका के साथ बप्पा आ रहे थे, चुपचाप, सिर झुकाये, छह बरस के अबोध बच्चे को जबरन मां से दूर भेज देने के अपराध भाव में डूबे. बप्पा की आंखों में भरे आंसू भी गिरने-गिरने को थे. अम्मा तो आंसू बहा ही रही थीं, उनका 'कोख पोछना पूत' उनसे बिछड़ रहा था.

नाला पार कर नीम की छांव तले अजय प्रकाश ने गाड़ी रोकी तो अम्मा-बप्पा और सभापति काका भी रुक गये. सत्ती जान गया कि यही है सरहद, जिसके पार उसे जाना है, जिसके बारे में वह जानता कुछ नहीं, सोच भर सकता है. जानता है तो सिर्फ इतना कि वहां भाभी हैं, उनके बच्चे हैं और हैं दादी अम्मा, बप्पा की निसंतान रह गयीं बुआ. अंधी और बूढ़ी.

'अब आप लोग लौटि जाव, कहां लग चलिहौ.'

'हां, जाव बेटा, सत्तेवा क्यार ख्याल राखेव, इयो अब तुम्हरे भरोसे है. खांय-पियैं केरि चिंता राखेव अउर मारेव नैं, डांटि-फटकारि कै काबू मा करि लेहेव.' कहते-कहते बप्पा का गला रुंध गया और वे घर की ओर मुड़ गये. और अजय प्रकाश को ज़्यादा कुछ करना नहीं पड़ा. सत्ती उनके काबू में आ गया, लेकिन आज उसने विद्रोह कर दिया, जिसकी कल्पना तक नहीं कर सके होंगे अजय प्रकाश. तभी तो सत्ताइस बरस की भरी जवानी में उन्होंने उसे चांटा जड़ दिया.

सत्य प्रकाश और कमला के बीच जुड़ा तार इतना कमज़ोर होगा, यह तो किसी ने सोचा तक न था, न अम्मा-बप्पा ने, न ही घर के बाकी लोगों ने. खुद बड़े भैया कहां चाहते रहे होंगे ऐसा. कमला के पिता ऐसा सोच पाते तो उससे कमला की शादी ही क्यों करते? हां, कमला की मां को ज़रूर ऐसी आशंका थी. तभी तो उस सुबह वे सत्य प्रकाश के पांव पड़कर रोयी थीं, जिस सुबह सत्य प्रकाश के साथ कानपुर आने की बजाय कमला न जाने किसके साथ कहां चली गयी थी. सत्य प्रकाश और कमला के जीवन की वह

पहली यात्रा ही उनके चिथड़ा-चिथड़ा भविष्य का संकेत दे गयी थी. सत्य प्रकाश के दिल में उस दिन ऐसा घाव हुआ, जो फिर कभी भरा नहीं जा सका, जीवन भर जिससे खून रिसता रहा और सत्य प्रकाश के वजूद को अहर्निश ऐसी टीस देता रहा कि शादी के बाद एक दिन भी वह चैन से नहीं सो सका. मिडिल करने के एकदम बाद कुलगुरु चैतन्य शास्त्री ने हाथ देखकर उसके भविष्य का ऐसा ही खाका खींच दिया था. थोड़ा-बहुत जो बचा था, वसुधा के शाप ने नसा दिया.

आठवीं का रिजल्ट आया ही आया था कि एक दिन कुलगुरु चैतन्य शास्त्री श्यामगंज पधारे और सत्य प्रकाश की चौपाल में डेरा डाल दिया. चार लोगों के बाद सत्ती का हाथ देख चकित हो बोले, 'यह बालक तो बड़ा प्रतापी होगा. देश-देशांतर में पिता का नाम रोशन करेगा, लेकिन सावधानी न रखी गयी तो गड़बड़ भी बहुत करेगा, मगर किसी का कुछ बिगाड़ेगा नहीं. गड़बड़झालों के बीच भी कुछ ऐसा करेगा कि दुनिया देखेगी. शादी न करे तो भविष्य उज्ज्वल ही उज्ज्वल है, लेकिन हाथ की रेखाएं कह रही हैं कि रुक्मिणी, सत्यभामा, राधा और मीरा, सब इसके जीवन में होंगी, लेकिन अंत में कोई साथ न होगा. पिछड़े इलाके की सत्यभामा इसके भीतरी और बाहरी संसार को आग लगायेगी तो अगड़े घर की रुक्मिणी प्यार तो बहुत करेगी, लेकिन ईर्ष्या में इसकी भीतरी शांति भंग करती रहेगी. बियाबान में यह असहाय और अकेला मरेगा.' कहते हुए शास्त्री जी चुप हो गये और कुछ पल बाद उससे मुखातिब हुए, 'सत्ती बेटे, तेरी असमय मृत्यु का कारण कोई स्त्री बनेगी, इसलिए चक्कर में मत पड़ना. कभी पड़ ही जाना तो भूलकर भी शादी न करना. कर लेना तो कोई और लफड़ा न पालना, मगर सत्ती बेटे, तेरे हाथ की रेखाओं में जो है, वह तो होकर रहेगा और...' कहते-कहते शास्त्री जी का चेहरा बुझ गया. झटके में उठे और तेज़ी से निकल गये.

केओं...केओं...मोरों की पुकार ने सत्य प्रकाश का ध्यान भंग किया तो उसकी नज़र डूबते सूरज की किरणों पर पड़ी. वह भी ऐसे ही डूबते हुए श्यामगंज के लोगों के वचन-कुवचन सुनेगा और फिर शहर अकेलेपन की आग में तपेगा. आखिरी बार गोपालपुर जाकर वहां भी सब कुछ देखे-सुनेगा और फिर तय करेगा कि लड़े या नहीं. सोचते हुए सत्यप्रकाश को लगा कि सभापति काका शायद ठीक ही कह रहे हैं, 'इस समय खुद को बेगुनाह साबित करने के चक्कर में मत पड़, बात मान, घर आ, काकी से पैसे ले और गोली मार गांव-घर को. तू तो दिल्ली जा.' दिल्ली की बात सोचते ही मंजरी उसके भीतर नये रूप में घर करने लगी. धीरे, बहुत धीरे! ❑

बासु दा और उदास हीरामन

● प्रयाग शुक्ल

बासु दा यानी बासु भट्टाचार्य के बारे में कोई भी बात भला 'तीसरी कसम' फिल्म के बिना कैसे पूरी हो सकती है– आज भी नहीं होगी और कल भी नहीं होगी. इसलिए सबसे पहले वह. 'तीसरी कसम' के प्रसंग से ही तो उनसे मेरी भी मैत्री हुई थी– आज से कोई दस वर्ष पहले मुंबई में हम दोनों के ही मित्र फिल्म अभिनेता और रंगकर्मी दिनेश ठाकुर के घर में. संक्षेप में यह कि यह भेंट-मैत्री सामान्य परिस्थिति में नहीं हुई थी. रात को फिसलने से और फिर एक बर्तन की नुकीली किनारी से टकराने से दिनेश को नाक में कुछ चोट लग गयी थी. वह गहरी तो नहीं थी पर, खून बहता देखकर में कुछ चिंतित हो गया था. मैंने ज़िद पकड़ ली कि किसी डॉक्टर से मरहम-पट्टी करवा लेते हैं. इतनी रात को, दिनेश ने कहा, 'कहां जा सकते हैं?' फिर न जाने क्या सोचकर उन्होंने बासु दा को फोन किया. शायद तीन बज रहे थे. पंद्रह मिनट भी नहीं बीते थे कि बासु दा आ पहुंचे. कैसे क्या हुआ था, यह मैंने उन्हें बंगला में बताना शुरू किया. मेरे मुंह से बंगला सुनकर कुछ चौंककर और कुछ दिलचस्पी से उन्होंने मेरी ओर देखा और स्वयं उन्होंने दिनेश के जख्म पर मरहम-पट्टी करनी शुरू कर दी. एक कुशल

डॉक्टर की भांति. मूक दर्शक की तरह खड़े रहना ही मुझे अखरा होगा, इसलिए मैंने बंगला में ही उनसे पूछा, 'चा खाबेन?' 'ह्यां खाबो.' उन्होंने जवाब दिया. मैंने तीन कप चाय बनायी. बासु दा स्वयं आश्वस्त हो गये थे कि जख्म ज़्यादा गहरा नहीं है और हमें भी आश्वस्त कर चुके थे कि घबराने जैसे कोई बात नहीं है. पर, चाय पीकर बोले, 'चलते हैं केमिस्ट से कुछ दवा भी ले आते हैं.' उन्हीं की गाड़ी में, हम एक ऐसी केमिस्ट शॉप में पहुंचे जो चौबीसों घंटे खुली रहती थी, लौटे तो पौ फटनी शुरू हो गयी थी... बोले, चलो अब सुबह की चाय हमारे घर पर पीते हैं... तो हम सुबह कोई साढ़े पांच बजे पहुंचे 'गोल्डमिस्ट' 36, कार्टर रोड, बांद्रा में... उजाला होने लगा था और उनकी बालकनी में रखे हुए ढेरों पौधों की आकार-रेखाएं स्पष्ट होने लगी थीं. सामने के जागिंग पार्क में लोगों का आना शुरू हो चुका था और समुद्र भी अब दूर कहां था....

सुबह की उस चाय के साथ ही 'रेणु, शैलेंद्र, 'तीसरी कसम' के नाम हमारे बीच कुछ बार दुहराए गये. मैं दिनेश के घाव की ओर से अब तक निश्चिंत हो ही चुका था. 'तीसरी कसम' पर थोड़ी-सी चर्चा और होती रही. पर, जाहिर है कि इतने सुबह-सबेरे लम्बी चर्चा की न तो गुंजाइश थी और न ही वह मुझे करनी चाहिए थी. पर, मैं इतना फिर देख सका कि 'रेणु' के प्रति मेरी भक्ति-अनुरक्ति और 'तीसरी कसम' के प्रति मेरे गहरे लगाव से, बासु दा के मन में मेरे लिए थोड़ी-सी दिलचस्पी और बढ़ गयी है. जब उनसे विदा लेकर हम लोग चलने लगे तो मैंने सोचा भी नहीं था कि उनसे उसी दिन फिर भेंट हो जायेगी.'

दोपहर को कोई एक बजे उनका फोन आया. दिनेश ने ही उठाया. थोड़ी देर तक बात करने के बाद, उन्होंने मुझे फोन पकड़ा दिया, 'बासु दा, तुमसे बात करना चाहते हैं.' 'क्या कर रहे हो, आज दोपहर को, क्या कहीं निकलने वाले हो?' उन्होंने पूछा. मैंने कहा, 'नहीं, यहीं हूं.' 'तो फिर तुरंत हमारे घर आ जाओ. माछ-भात खाते हो न? आज वही बना है. ...और हां, 'तीसरी कसम पर बात करेंगे...''

उनके यहां बितायी वह दोपहर, कब शाम में बदल गयी पता ही नहीं चला. 'शैलेंद्र ही लेकर आये थे वह कहानी. सबसे पहले मेरे पास...' बासु दा ने कहा था. फिर तो न जाने कितनी बातें 'तीसरी कसम' को लेकर हुई थीं... होती ही रही थीं. ...और बाद में भी मिलने पर होती रहती थीं...

रेणु, रचनावली खंड-5 में भी दर्ज है– पृष्ठ 120 पर 'पहली चिट्ठी' शैलेंद्र की 'रेणु' के नाम...

बंधुवर फणीश्वरनाथ,

सप्रेम नमस्कार. 'पांच लम्बी

कहानियां' पढ़ीं. आपकी कहानी मुझे बहुत पसंद आयी. फिल्म के लिए उसका उपयोग कर लेने की अच्छी पासिबिलिटीज (सम्भावनाएं) हैं. आपका क्या विचार है? कहानी में मेरी व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी है. इस सम्बंध में यदि लिखें तो कृपा होगी.

धन्यवाद.

आपका... शैलेंद्र.

और तिथि दी हुई है : अक्टूबर 23, 1960. शेष सब इतिहास है और इस इतिहास का कुछ हिस्सा स्वयं 'रेणु' लिख चुके हैं. 'तीसरी कसम' के सेट पर 'तीन दिन'– यह संस्मरण लेख 'धर्मयुग' 26 अप्रैल, 1964 में प्रकाशित हुआ था और 'रेणु, रचनावली' के खंड-4 में संकलित है. 'रेणु, रचनावली' में ही संकलित हैं, फिल्म 'तीसरी कसम' से सम्बंधित अन्य वृत्तांत 'स्मृति की एक रील', 'एक फिल्मी यात्रा' आदि भी...

'तीसरी कसम' के सेट पर पहले दिन 'रेणु' ने क्या देखा था : 'स्टूडियो के अंदर कदम रखते ही डायरेक्टर (यंग.) बासु भट्टाचार्य का उच्च ग्राम में बंधा हुआ स्वर सुनाई पड़ा, 'शैलेंद्र!... उधर देखो–तुम्हारा गेस्ट.''

निश्चय ही यंग. बासु दा तब तीस के भी कहां थे. आज, हम यह फिर याद कर सकते हैं. 'रेणु' ने आगे लिखा है : ...सुब्रत मित्रा के 'मन के माफिक' कुहरा भरी सांझ (पवित्र सुगंधमयी संध्या) फिर आयी (यानी रच दी गयी) गाड़ीवान पट्टी के उस कोने पर. ऐसे वातावरण में पीछे से एक भद्र महिला सिलेटी रंग की फूलदार साड़ी में– झुकी निहुरी, भले घर की बहू-बेटी जैसी प्रकट हुई. ...बासु, भट्टाचार्य सेट पर ही नहीं– सेट के बाहर भी तनिक अधिक ज़ोर डालकर बोलते हैं और खास-खास मौके पर उनकी बात 'दुधारी' मार करती है. बोले, 'देखुन राइटर साहब. आपनार हीराबाई.' 'देखुन हीराबाई. आपनार राइटर साहब.' और सुब्रत मित्रा की याद करते हुए 'रेणु' लिखते हैं : मुझे याद है, आज से तीन वर्ष पहले जब आउटडोर के लिए 'लोकेशन' देखने और गुलाब बाग मेले की शूटिंग के लिए 'तीसरी कसम' की यूनिट पूर्णिया गयी थी... 'पाथेर पांचाली', 'जलसाघर', 'अपराजितो', 'अपूर संसार' को सेल्यूलाईड पर अंकित करने वाले व्यक्ति (और मशीन) को निकट से देखने का सुअवसर मिला था. हम करीब एक सप्ताह एक साथ रहे थे. वे मेरे गांव-मेरे घर में कई दिन ठहरे ही नहीं थे– मेरी हवेली के अंदर (कथांचल के लोगों के चलने-फिरने, बोलने-बतियाने के ढंग को चित्रबद्ध करने के लिए) परिवार की महिलाओं का 'चलचित्र' लिया था. ...तीन दर्जन बैलगाड़ियों की दौड़... आम के बाग की ढलती हुई छाया ...सिंदूरी-सांझ की पृष्ठभूमि में उड़ते हुए बगुलों की पातियां...

इन सारे दृश्यों को 'ग्रहण' करते समय सुब्रत बाबू के चेहरे पर एक अद्‌भुत चमक खेल जाती थी...'

तो ढेरों संस्मरण और किस्से हैं 'तीसरी कसम' के बनने के.

दरअसल, अपनी तरह से भिन्न माध्यमों में उनको गढ़ने वाले दोनों ही व्यक्ति चले गये हैं, 'रेणु' और बासु दा. पर, उन्हें अपने पीछे बराबर के लिए 'जीवित' छोड़ गये हैं.

1966 में रिलीज होने वाली 'तीसरी कसम' फिल्म खुद एक कहानी बन गयी है. कितनी और कैसी तैयारियों के साथ वह पूरी हुई–कितनी ही बाधाओं को पार करती हुई–तथा कितने लोगों की लगन ने उसमें जान डाली, इसे बार-बार दुहराया जायेगा.

शैलेंद्र, सुब्रत मित्र, बासु दा, राजकपूर, वहीदा रहमान, मुकेश, लता मंगेशकर, स्वयं 'रेणु' तथा और भी कितने जाने-अनजाने कैसे 'तीसरी कसम' की लड़ी में गुंथते और उसे गूंथते चले गये, उसकी मिसाल हिंदी सिनेमा में तो दुर्लभ ही है. बासु दा से भेंट होने से बहुत पहले मैंने लखनऊ की पत्रिका 'छायानट' में एक लेख लिखा था और उसमें 'तीसरी कसम' को चर्चा इस रूप में की थी कि वह वास्तविक अर्थों में हिंदी (भाषा) की सम्भवत: पहली फिल्म है. एक भाषा और उसके ग्राम्य समाज की संस्कृति की प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने वाली, उसके संवादों-गीतों तक में यह 'प्रामाणिकता' है. 'सजन रे. झूठ मत बोलो', 'चलत मुसाफिर' जैसे गीत क्या पहले किसी हिंदी फिल्म में अपने शब्दों और सुरों के साथ इस तरह घुल-मिल गये थे, सही अनुपात में?

बासु दा को मैंने बताया था कि 1973 में एक शाम 'रेणु हमारे घर आये थे, दिल्ली में और यह जानकर कि मेरे पास 'तीसरी कसम' का एलपी है (जो 1967 में हुए मेरे विवाह में, मुझे और पत्नी ज्योति को भेंट में मिला था) उन्होंने उसे बजाने का आग्रह किया था... उस दिन 'रेणु' के मुंह से भी तो शैलेंद्र और 'तीसरी कसम' को लेकर कितने संस्मरण सुनने को मिले थे.'

'रेणु' ने ठीक ही तो पकड़ा था 'बासु भट्टाचार्य किसी बात पर तनिक अधिक ज़ोर डालकर बोलते हैं.' यह उनका स्वभाव भी था और शैली भी. इसी तरह 'ज़ोर डालकर' उन्होंने मुझसे एक बार हिंदी के सवाल पर कहा था, 'अब हिंदी भाषी समाज के नेता–हिंदी भाषी प्रदेशों के नेता–स्वयं अच्छी हिंदी बोलने-बरतने का आग्रह नहीं रखते, इसलिए भी है हिंदी की कई जगहों पर दुर्दशा. क्या बंगाल, केरल, महाराष्ट्र का कोई नेता अपनी भाषा के साथ वैसी छूट लेकर काम चला सकता

है, जिस तरह की छूट हिंदी भाषी नेता लेते हुए दिखाई पड़ते हैं.'

बासु दा से भेंट होती थी तो भारतीय सिनेमा, विश्व सिनेमा, रंगमंच, चित्रकला, संगीत, साहित्य और तमाम सामाजिक-राजनीतिक सवालों पर चर्चा होती थी– जब जिसकी बारी आ जाए. मेरी अंतिम भेंट मुंबई में इसी वर्ष अप्रैल के महीने में उनके निवास पर हुई थी. तब बासु दा ने अपनी अगल फिल्म ('आस्था' के बाद) की कहानी सुनाई थी. एक वैज्ञानिक के प्रसंग से, जो अमेरिका में उच्च-शिक्षा के लिए जाता है और फिर वहीं बस जाता है, के बहाने भारतीय जीवन-शैली, भारतीय जन के 'दर्शन' आदि की पड़ताल की बात वह सोच रहे थे. वैज्ञानिक तो अमेरिका में बस जाता है, पर, उसके घर-परिवार में क्या-क्या घटित होता है, इस सबको भी फिल्म में रहना था.

जाहिर है कि वह फिल्म अब कभी नहीं बनेगी और 'तीसरी कसम' को छोड़कर यहां मैंने उनकी अन्य फिल्मों की याद भी नहीं की है और इसे कौन नहीं जानता और बासु दा तो जानते ही थे, कि वे 'तीसरी कसम' को फिर कभी दोहरा नहीं सके. इस मामले में उनके अपने तर्क थे जिनसे सहमत-असहमत हुआ जा सकता था. पर, भला इसमें क्या शक कि 'तीसरी कसम', 'तीसरी कसम' है. और अगर यह कहा जाए तो इसमें शायद ही अतिरंजना हो कि उनके न रहने से हीरामन और हीराबाई जितना उदास कोई न होगा. दरअसल, अपनी तरह से भिन्न माध्यमों में उनको गढ़ने वाले दोनों ही व्यक्ति चले गये हैं, 'रेणु' और बासु दा. पर, उन्हें अपने पीछे बराबर के लिए 'जीवित' छोड़ गये हैं.

उदास और भी न जाने कितने व्यक्ति होंगे, जो उनके सम्पर्क में आये थे और कितनी बड़ी थी उनकी मित्र-मंडली. हर आयु-वर्ग के लोगों के साथ इतनी समग्रता से वह एक रिश्ता बनाते थे कि अचम्भा होता था. मुझे याद है, जब कुछ बरस पहले मेरी बड़ी बेटी अंकिता, टेक्सटाइल का एक कोर्स करने के लिए चार महीने मुंबई में रही थी तो उसे भी बासु दा का भरपूर स्नेह मिला था. जब वह इस दुविधा में थी कि मुंबई में रहकर यह कोर्स करे या नहीं तो बासु दा ने उससे कहा था, 'बंबई में ज़रूर रहना चाहिए. यह शहर आदमी को लोहे की तरह मजबूत बना देता है.' मुंबई में युवा दिनों के उनके अपने संघर्ष रहे थे.

निश्चय ही बासु दा बंबई (अब मुंबई) में वह सम्भव कर सके, 'तीसरी कसम' के माध्यम से, जो अब कल्पनातीत लगता है. तो यह उनके और उनके सहयोगियों की तपी हुई ज़िंदगियों के कारण ही तो सम्भव हुआ. हिंदी-जगत और भारतीय सिनेमा भला उन्हें भूल सकता है? ❑

दौर-ए-कोरोना

● रुचि भल्ला

लटन में रहते हुए मुझे चार बरस हो गये हैं. इस घर के आंगन में फलों के पांच पेड़ लगे हैं. आप कहिए तो नाम बता दूं– आम, शरीफा, चीकू, नारियल और अमरूद. यकीन मानिए चार बरस से मैंने फलों को बटोरते हुए उनकी गिनती नहीं गिनी. बस फलों को देखा ...पाया और उनका स्वाद लिया. हर मौसम में मुझे यहां मौसमी फल मिले हैं पर इस दौर ने मुझे उन पेड़ों से गिरे सूखे पत्तों को बटोरने का जब मौका दिया तब जाना कि पेड़ से फल ही नहीं, सूखे पत्ते भी तमाम झरा करते हैं. कसम से आंगन में सींख झाड़ू लगा–लगा कर मैंने अब जाना कि क्वारंटीन समय में गृह सहायिका शीला के जाने के बाद से घर का आंगन कुछ ज़्यादा बड़ा हो गया है कि चार कोने उसके मुझसे सिमटते ही नहीं. वैसे इस बात की समझ मुझे मिली ज़रूर दौर-ए-कोरोना में है पर यह पाठ तो दरअसल प्रकृति सिखा रही है.

24 मार्च 2020

'कोरोना' यह शब्द लिखना भी कलम के लिए कठिन है. कठिन दौर में छत पर खड़ी मैं देख रही हूं काली तितली को जिसने पंखों पर आठ पीले नींबू उठा रखे हैं. जी! आप उन्हें नींबू ही समझिएगा कि वह मेरे देखते-देखते गली पार नींबू के झाड़ से मिल कर आयी है. उसे गली पार करने की मनाही नहीं है. मनाही तो इस दौर में गुड़ी पाड़वा के आने की भी नहीं है.

ऐसे समय में गुड़ी तन कर खड़ी है बांस की लाठी का सहारा हाथ में लेकर कि उसे भरोसा है अपने पांव की ज़मीन के टिके होने पर. वह यकीन दिलाती है कि आदमी का सहारा खुद आदमी होता है. वह अपने ही सहारे खड़ी है. अपनी छत पर खड़े होने का मतलब आज के समय में गुड़ी जानती है कि वह सुरक्षा चक्र में है. वह सावधान है. वह सचेत है. अपनी छत से देख रही है वह दुनिया की छत को. हर छत पर आज गुड़ी है. छत से छत जुड़ी है. गुड़ी फिर भी एक-दूसरे से दूर खड़ी है. यह दूर होना ही आज पास होना है. यही सामाजिक एकजुटता है. यही आज के समय में सोशियल डिस्टेंसिंग का मायना है.

मैं देखती हूं गुड़ी को ...हैरत होती है

कि मास्क लगाए गुड़ी 'घर पर ही रहें' का प्रचार बिन बोले करती जा रही है. एक हाथ से वह खट्टी कैरी का स्वाद लेती है तो मीठा गुड़ और नीम की कसैली पत्तियां भी उसके सामने रखी हैं. यह नव वर्ष की सौगात है. हर तरह का स्वाद चखने को वह तैयार है. खट्टे-मीठे और कड़वे स्वाद के बीच जलती दो अगरबत्तियों ने उसकी छत को ही नहीं, मन को ही नहीं, देह को भी सुवासित कर रखा है. गुड़ी मानव देह की प्रतीक है.

ऐसे दौर में नयी साड़ी पहनने की उसकी जिजीविषा देखने वालों के मन में जीवन जीने का दम भरती है. पुख़्ता यकीन दिलाती है कि जीवन जीवन से भरा होता है. दम तो पृथ्वी भी जीने का भर रही है. हवा अभी थमी नहीं है...कॉपरस्मिथ बारबेट ठठेरा पक्षी अपनी बोली से ठक-ठक करता चला जा रहा है ...उसके बोलने की गति किसी हाल रुकती नहीं है...वह भी याद दिलाता है कि जीवन सावधानी से चलने का नाम है.

सबरंग तितलियां गली में फूलों के लिए उड़ रही हैं ...खिले फूलों के पास रंग अशेष हैं. गिलहरी भरी दोपहर में नीम की शाख पर प्राणायाम करने में जुटी हुई है. ब्लू सनबर्ड भी व्यस्त है सहजन के फूलों से गप्प लड़ाने में. मीठे चीकू खट्टी कैरियों के दीवाने हुए जा रहे हैं. श्रीफल का चेहरा भी गर्व से तना है ...वह देख रहा है गुड़ी को चैत की हवा का स्पर्श करते हुए ...वह हवा जो आज़ाद हिंद की है जो यकीन दिलाती है कि यह वक्त भी बीत जायेगा क्योंकि वक्त वह आसमानी परिंदा है जिसके पास ठहरने के लिए ज़मीनी पांव नहीं होते, ज़मीन तो आदमी के पांव तले होती है.

25 मार्च 2020

मार्च का महीना फलटन में कैरियों के नाम होता है वैसे तो नीम के फूलों का भी उन पर हक होता है. ये दोनों पेड़ मेरे आंगन में लगे हुए हैं. चैत की हवा का संग पाकर आंगन में दिन-रात कच्ची कैरियां गिरती जाती हैं और नीम के दरख़्त से फूल झरा करते हैं. दोनों दरख़्तों में होड़ लगी होती है कि हम कितना झरें जबकि निश्चित रूप से नीम के नाज़ुक फूल गिरने में बाज़ी मार ले जाते हैं. सच कहूं तो वे गिरते क्या हैं, उन्हें उठाने में आजकल मेरा दम लगा हुआ है. नीम के फूल ही नहीं, उसके सूखे पत्ते भी गिरने में पीछे नहीं हटते. आम का दरख़्त अलग से अपना काम करता जाता है.

क्वारंटीन में आंगन को सींख झाड़ू से बुहारते हुए मेरे मन में आया कि सूखे पत्ते इकट्ठे कर आंगन के पीछे जो रेतीली ज़मीन है, वहां डाल दिये जाएं ...वह जगह दरअसल सूखी पत्तियों का आश्रय स्थल है जो अपनी तन्हाई में शुष्क पत्तों की बोलती आवाज़ के साथ रहती है...जिसकी

अपनी एक कहानी है पर बात यहां पर अभी मैं उस कहानी की नहीं, कच्ची कैरियों की कर रही हूं. ये कैरियां अभी इतनी कच्ची हैं कि इनमें वक्त की खटास बस आनी शुरू हुई है. छोटी कैरियां हवा का हाथ लग कर इतनी गिरी हैं कि उन्हें गिनना तो दूर, बटोरना भी मुश्किल है. तो आज जब मैं आंगन बुहार रही थी ...काम को कम करने के इरादे से मैंने सोचा कि कैरियों को गेट से बाहर ही कर दिया जाये...जबकि वह सही तरीका नहीं था कि आंगन को समेट कर सड़क पर फैला दिया जाये. फिर भी उस उधेड़बुन में मैंने कैरियों को गेट के बाहर कर दिया.

बाहर गली से जुड़ी सड़क थी पर अभी कैरियां गेट के पास ही थीं. मैंने उन्हें देख कर सोचा कि हवा लगते ही वे कहीं गली में न फैल जाएं तभी मेरी सोच के दरम्यान चितकबरी एक गाय गली में गेट की ओर आती हुई दिखाई दी. गेट के पास आकर वह रुकी और उसने उन कैरियों को खाना शुरू कर दिया. अब तक घर का आंगन शीला बुहारती आयी है तो इन बेहद छोटी कैरियों का हश्र मैंने देखा नहीं था पर आज खुद उनके पास खड़े होकर देखा कि वे अनगिन कैरियां गाय के उदर में समाती जा रही थीं. तबसे ये सवाल मेरे ज़ेहन में हैं कि क्या गाय कैरियां चाव से खा लेती हैं या दौर-ए-कोरोना में यह उसकी भूख का मसला है. भूख जोकि अपने सामने सिर्फ़ भूख देखा करती है. भूख की आंख में स्वाद का पानी नहीं होता है, न खट्टा-न मीठा.

26 मार्च 2020

1958 की 'मधुमती' से कौन अपरिचित है...वह मधुमती जो ऋत्विक घटक की लिखी कहानी है...राजिंदर सिंह बेदी के लिखे जहां संवाद हैं. आज मैं उस कहानी और संवाद की बात नहीं कर रही, न बात कर रही हूं विमल रॉय की फ़िल्म के बारे में. बात कर रही हूं उस बिछुआ के बारे में जिसकी पहचान हम स्कॉर्पिओ नाम से भी करते हैं. बिच्छू की बात पर उसकी शक्ल से ज़्यादा उसके डंक का ख्याल चला आता है. बिछुआ के नाम पर वह गीत सबसे पहले ज़ुबान पर आता है जिसे लता मंगेशकर और मन्ना डे ने आवाज़ दी है. उनकी युगल आवाज़ के सहारे मधुमती फ़िल्म की वैजयंती माला और दिलीप कुमार के जीवन से भरे श्वेत-श्याम चेहरे आंखों के आगे चले आते हैं–

ओ दैया रे दैया रे
चढ़ गयो पापी बिछुआ
कैसी आग लगा गयो पापी बिछुआ
सारे बदन पे छा गयो पापी बिछुआ

यह गीत मेरे क्या ... किसी के भी होठों पर जब आता है तो एक थिरकन ले आता है...कदम उस पर ताल देने लग जाते हैं...मन पर गीत का उल्लास छा

जाता है. उस पापी बिछुआ की कल्पना रोमांच से भर देती है जो पापी तो कतई नहीं होता, उल्टा उसका मन प्रेम से लबालब होता है तब वह बिछुआ बिच्छू नहीं, प्रेम का प्रतीक बन जाता है.

यह गीत मेरे भी ज़ेहन में सदियों से पसंदीदा होकर बसा हुआ है. मेरे जन्म से बहुत पहले की यह फ़िल्म है. इस गीत को सुन कर मैं बड़ी हुई हूं. बिच्छू मेरे लिए भी पापी बिछुआ बन कर रहा है. वह पापी बिछुआ जो मधुमती की वैजयंती माला को मिला था पर समय के साथ गीत के मायने बदल जाते हैं और पापी बिछुआ के होने के अर्थ भी.

कल रात की यह बात है कि किसी काम से अचानक मुझे आंगन में जाना पड़ा और मैं जल्दबाज़ी में नंगे पांव ही आंगन में चली गयी. दरअसल गयी क्या दो कदम भी नहीं चली थी कि मेरे दांये पांव की तीसरी अंगुली में अचानक जैसे किसी ने डंक मार दिया... इससे पहले मैं समझती कि क्या हुआ, वह मेरी आंखों के आगे था. वही पापी बिछुआ...जो डंक मार कर आगे बढ़ गया था और मैं वहीं डंक के साथ खड़ी रह गयी. अब आप सब यह न मुझसे पूछिएगा कि कैसो रे पापी बिछुआ...? क्योंकि इसके जवाब में फिर मुझे यही कहना पड़ेगा कि यह वह पापी बिछुआ नहीं था जिसके लिए वैजयंती नृत्य करते हुए गीत गाती हैं–

ओ हाय -हाय रे मर गयी
कोई उतारो बिछुआ...

यह उस फ़िल्म की कहानी का बिछुआ नहीं था, जीवन की हकीकत का बिच्छू था जिसके डंक की निशानी मधुमती फ़िल्म की कहानी नहीं, मेरे दांये पांव की तीसरी अंगुली की कहानी है.

28 मार्च 2020

एक दर्जन दिन तो आज हो ही गये हैं जबसे शीला मेरे घर नहीं आ रही क्योंकि ये दिन आपसी दूरियों के संग बिताये जा रहे हैं. मुझे ही नहीं, घर को भी शीला की रोज़ याद आती है. यह घर उसके वडरी हाथों से दो साल से संवरता आ रहा है. आप शीला को इस घर की सहेली कह सकते हैं क्योंकि दोस्त ही दोस्त को संवारता है. घर को ही क्या घर के बाहर गली को भी शीला की याद आती है जहां वह आज़ाद हवा में साइकिल पर सवार होकर काम के लिए रोज़ आया करती थी. उसकी साइकिल के पहिए को भी सड़क की याद आती होगी.

तमाम यादों के बीच मैं कहूंगी कि आज दोपहर मैंने शीला को फ़ोन करके कहा कि मार्च का महीना भी समाप्त हुआ तुम कमसकम अब तो आकर अपना वेतन ले जाओ.... हालांकि मैं उससे यह बात पिछले दस दिनों से कह रही हूं पर आज ही उसका आना हो सका. वह जब आयी... उसका गेट के पास खड़े होना जैसे आंगन

में कुहुकती कोकिला का चले आना था....

वह गेट के बाहर थी और मैं घर की दहलीज़ के अंदर. मेरे और उसके दरम्यां वक्त का तयशुदा फ़ासला था. उसे देखते हुए मैंने दर-ओ-दीवार की ओर देखा ...विस्मित आंखों से वे सब शीला का आना देख रहे थे. आंगन को उसके कदमताल का परिचित स्पर्श मिल रहा था. घर के भीतर शीला के लिए काम ही काम की पुकार थी पर वक्त को आज यह मंज़ूर नहीं था.

वेतन उसे देते समय घर का आंगन मुझे समंदर लग रहा था और घर समंदर बीच जहाज.... मेरे देखते-देखते चैत की हवा गेट के भीतर आकर शीला के पास ठहर गयी. हवा के हाथ में सूखे पत्तों का थमा पुलिंदा था जिस पर 'सेमुअल टेलर कोलरिज' की कविता 'दि टाइम ऑफ एनशियंट मेरीनर' की पंक्तियां लिखी हुईं थीं–

वाटर, वाटर, एवरीवेअर
नॉट ऐसी ड्राप टु ड्रिंक

चैती हवा के पास खड़ी शीला को मैं देख रही थी. शीला की काया समंदर का जल हो रही थी जिसकी छवि मेरी आंख के पानी में थी ...पानी जो बोल रहा था पानी की बोली कि शीला सामने भी है और हासिल भी नहीं जैसे जहाज के पंछी अल्बेट्रॉस के पास समंदर सारा है पर पीने के लिए पानी की बूंद नहीं.

31 मार्च 2020

आंगन में खड़े होकर आसमान देखने का जो सुख है, छत से आसमान देखने पर वह सुख दोगुना हो जाता है. छत से खुला आसमान थोड़ा करीब नज़र आता है. उड़ते पक्षी थोड़े और पास आ जाते हैं कि आप उनकी आंखों में आंखें डाल कर देख पाते हैं. आस-पास की दुनिया भी छत से बेहतर नज़र आती है. आस-पास की बात पर कहूंगी कि सहजन का एक पेड़ मेरी आंखों के सामने मेरी छत से दिखता है. वह प्रियंका के घर पर लगा है. प्रियंका का घर मेरे घर की बांउड्री वॉल से जुड़ा है. कुछ दीवारें पुल का भी काम करती हैं.

पुल के पार सहजन का पेड़ मुझे कभी खुद से दूर नहीं लगता. चार साल से मैं उस सहजन से मिलने अपने घर की छत पर चली जाती हूं. पक्षियों का संसार मैंने उस पर बसते देखा है. जिन पक्षियों के मैंने कभी नाम नहीं सुने थे, वे खुद-ब-खुद यहां चले आये मेरा नाम मुझसे पूछने. वे नाम पूछते, मैं उनकी बोली सुनती. आप यकीन करिये मैंने उन्हें उनकी बोली से पहचानना सीखा ...रंग-रूप तो घर के भीतर बैठ कर दिखते नहीं पर उनसे मिलने के बाद घर में बैठ कर मैं जानती रही कि सहजन की सराय पर अभी कौन राहगीर पक्षी चला आया है.

उस पेड़ को देख कर मैंने यह भी जाना

कि तितलियों को ही फूल प्रिय नहीं होते, पक्षियों को भी फूल आकृष्ट करते हैं. आप पक्षियों के नाम लीजिए, मैं हां-न बताती जाऊंगी कि कौन-कौन यहां आता है. सहजन के फूल ने अपने दिल का दरवाज़ा हर पक्षी के लिए खोल रखा है. इस पेड़ पर पहली बार मैंने नीलकंठ को देखा ...वही नीलकंठ जो औघड़ शिव रूप है जिसने मानव जाति के सुख के लिए विष का प्याला पी लिया. यहां मैंने दर्जिन चिड़िया देखी जो जीवन के सुख-दुख की चदरिया कबीर जुलाहे की तरह बुनती रही. कॉपरस्मिथ बारबेट देखा और जाना कि पक्षी समाज में कोई ठठेरा बनता है.

बया की इंजीनियरिंग ने मुझे पल-पल विस्मित किया....पठारी मैना की पीली चोंच की पुकार में उपेंद्रनाथ अश्क की कविता भूले-बिसरे गीत सी सुनी. बुलबुल ने तो आकर शिक्षिका की तरह 'ओड टू अ नाइटिंगल' कविता का पुनर्पाठ कराया. असल कोकिला यहीं मिली जिसे मैंने सिर्फ़ 'स्विस कुकू क्लॉक' की खिड़की से बाहर झांकते देखा था. एशियन कोयल ने आकर मुझे सच के समय से वाकिफ़ कराया. सिल्वर आई बर्ड को कैसे भूल सकती हूं ...उसका गोल सिल्वर आईलाइनर यह याद दिलाता रहा कि वह संवरने के लिए नदी का आईना देखना नहीं भूलती. सहजन के फूलों को बेर की तरह चखती पर्पल सन बर्ड मुझे शबरी रूप लगती रही.

सुग्गे की लाल चोंच ने बताया कि यह वही प्रेम का लाल रंग है जो हाथ लगे छूटता नहीं. कबूतर की धारियों ने यकीन दिलाया कि वह रंगरेज़ है. सन बर्ड होती है यह सूरज ने खुलेआम स्वीकार किया. मैग्पाई भी यहां किताब के पन्नों से बाहर उड़ी चली आयी. धनेश कहां सबसे पीछे रहा. नाइन सिस्टर्स के आपसी बहनापे की मैं गवाह बनी. गौरैया का आना हर दिन की बात हुई. पठारी कव्वा भी आगे उड़ कर आया. फ़ैन टेल्ड बर्ड का जापानी पंखा मैंने यहीं खुलते देखा. फ़ोर्कटेल्ड पक्षी होता है ...मेरी काली आंखें चकित हुईं. वैगटेल्ड को देखा तो खड़ी देखती रह गयी. रेणु की हल्दी चिरैया से मैंने भरी दोपहर रेणु की कहानी सुनी. गोल्डफ़िंच, व्हाइट हैडेड ईगल, क्रो पीज़ेंट, डव, गोल्डक्रेस्ट, मुनिया चिड़िया जाने किस किसने इस सराय का दरवाज़ा आपनी चोंच से नहीं खटखटाया.

जब एक दिन मैंने बर्ड ऑफ़ पैराडाइज़ को सहजन के पेड़ की शाख पर बैठे देखा तो लगा दुनिया में क्या आश्चर्य सात ही हैं ...क्या वह पक्षी आश्चर्य नहीं जो अपनी बोली में मुझे बता गया कि स्वर्ग आसमानी कल्पना की आंख में नहीं, धरती के कदम तले है जहां सहजन के पेड़ की जड़ पांव जमाए खड़ी है पैराडाइज़ के आश्चर्य की तरह... जिस आश्चर्य की गिनती दुनिया के आश्चर्यों से पहले की वह कहानी है कि जब शून्य नहीं था, पेड़ तब भी था. ❑

रस-मिश्री

● संजय कुमार सिंह

पानी में मिश्री / लोग करे बखरा
एक कहानी / सत्रह टुकड़ा
हर टुकड़े का / अपना मोल
दादी बोले / मिट्टी बोल...

बाबू! पानी का मोल पीने वाला जाने और कहानी का मोल सुनने वाला. अपना आटा गीला करिए, तो जानिए कहानी! कहानी की कहानी. आज की कहानी थोड़े है, कि तथ्यों के साथ बिना पानी का सान दिये, तो चल जायेगी. उस ज़माने की है. जितना सच, उतना झूठ. दादी की कहानी. नानी की कहानी. कहानी में राजकुमार. राजकुमार का एक सुदामा जैसा गरीब दोस्त. सुमंगल. राजकुमार का नाम चंद्रसेन. उसके पिता का नाम क्षेत्रसेन. उसका बहुत बड़ा राज्य. राज्य में प्रजा अमनो-अमान से थी. सुख-समृद्धि की कोई सीमा नहीं. मगर युवराज चंद्रसेन विवाह की ओर से विमुख था. रानी रूपमती चिंतित रहती थी. चंद्रसेन दिन भर जंगल-जंगल शिकार खेलता रहता था. उसकी इस एक मात्र दिनचर्या में कोई अंतर नहीं आ रहा था. ऐसा उस दिन से हुआ था, जिस दिन से उसके मित्र दासपुत्र सुमंगल की हत्या हुई थी. अन्यथा वह उसके साथ आमोद-प्रमोद में लगा रहता था. लेकिन...? दादी कुछ इस तरह कहानी शुरू करती. जैसे भूमिका बांध रही हो. वह धीरे-धीरे कहानी कहती, रस लगा कर... जैसे बाबू जात का मोल आटा जाने, आटा का मोल रोटी, रोटी का मोल भूख, भूख का मोल पेट. ...ऐसा कम ही होता कि उसकी किसी कहानी का अंत पहले पकड़ में आया हो...

●●●

कहते हैं सुमंगल की हत्या के लिए रानी ज़िम्मेदार थी. रूपमती बुद्धिमान थी, पर थी बहुत क्रूर. दासपुत्र से राजपुत्र की दोस्ती उसे खटकती थी. उसने दास-दासियों के माध्यम से बहुत कोशिशें कीं, पर रिश्ता अटूट रहा.

'राजन?' हार कर एक दिन उसने राजा से कहा.

'कहो रानी?'

'चंद्रसेन और सुमंगल की मित्रता उचित है?'

'कदापि नहीं..' राजा बिगड़ा.

'फिर जो नीति-संगत नहीं है, उस पर आप विचार क्यों नहीं करते?' रानी उद्विग्न हुई, 'यह कब तक चलेगा? राज्य में निंदा हो रही है.'

'रूपमती, मित्रता और प्रेम हमेशा राज्य-सत्ता की अवज्ञा करते हैं.' राजा क्षेत्रसेन ने चिंतित होकर कहा, 'उनका अपना धर्म होता है...'

'मतलब?'

'चंद्रसेन नाराज हो सकता है, उस पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है...'

'तब?'

'यह काम बुद्धि का है...'

'तो वही कीजिए राजन.'

●●●

राजा ने सभासदों, पंडितों और मंत्रियों से परामर्श के बाद गुप्त रूप से यह मुनादी करवा दी कि जो चंद्रसेन और सुमंगल की मित्रता तुड़वा दे, उसे मुंह मांगा इनाम मिलेगा. कहते हैं, उस राज्य में लोग कहते थे, पानी को चीरा जा सकता है, आसमान में छेद किया जा सकता है, रेत में नाव चलायी जा सकती है, या फिर बिल्व फल को आम्रफल, आम्र फल को कदली फल बनाया जा सकता है, लेकिन सुमंगल और चंद्रसेन की मित्रता नहीं तोड़ी जा सकती.'

लेकिन तीर निशाने पर लगा!

'राजा का काम हो जायेगा.' एक बुढ़िया ने कहा, 'एक खड़खड़िया में आभूषण और वस्त्र आदि जो देना है, देकर भेज दें...!'

वैसा ही किया गया. खड़खड़िया में बुढ़िया बैठ गयी और उसे राज उद्यान में तालाब किनारे रख दिया गया. नियत समय पर चंद्रसेन और सुमंगल टहलने आये तो बुढ़िया ने सुमंगल को बुलाया.

वह हिचकते हुए आया, 'क्या बात है मां?'

'बुढ़िया का फुस्स!' वह हंसी.

सुमंगल कुपित होकर लौट गया. तब उसने चंद्रसेन को बुलाया.

वह गया और बोला, 'बोलो इस उद्यान में तुम कैसे आयी?'

'तुम्हारे मित्र को बता दिया है बेटा.' वह बोली, 'उसी से पूछ लेना...' बुढ़िया ने इशारा किया. इसके बाद खड़खड़िया लेकर लोग चले गये.

'मित्र सुमंगल?' उत्सुकता से चंद्रसेन ने पूछा, 'बुढ़िया ने क्या कहा?'

'कुछ नहीं.' वह चौंका.

'क्या?!' चंद्रसेन ने आश्चर्य किया.

'तुम्हारे कहने योग्य नहीं है मित्र!' उसने टालना चाहा, 'मुझे तो वह विक्षिप्त लगी... कुछ-कुछ अभद्र भी...'

'पहली बार कुछ छिपा रहे हो मित्र?' राजकुमार गम्भीर हुआ, 'वह विक्षिप्त तो नहीं थी... खड़खड़िया में थी... रहस्यमय...!

'तुम्हें ऐसा लगता है?'

'हां' चंद्रसेन ने नाराज होकर कहा, 'तुम कुछ अभिमान कर रहे हो मित्र?'

'नहीं.' सुमंगल ने हंसकर कहा, 'तुम्हें मतिभ्रम हो रहा है. मैं तो तुम्हारी मित्रता पर जान न्यौछावर कर सकता हूं!'

बुढ़िया के स्पष्ट कथन के बाद भी यह

प्रपंच? चंद्रसेन बहुत क्रोधित हुआ. वधिकों को बुलाकर उसने कहा, 'सुमंगल की हत्या कर, जंगल में उसकी लाश फेंक दी जाये...' कहावत है कि घोड़ा और राजपुरुष के न आगे चलिए और न पीछे. अपनी औकात से बड़े लोगों की सोहबत सुमंगल को ले डूबी... एक ज़रा-सी गलतफहमी पर राजा के सिपाही उसे पकड़ कर जंगल की ओर ले गये. ...कहते हैं, अब उसे मारा जाता कि एक बुढ़िया प्रकट हुई, उसने पूछा, 'इस आदमी को क्यों मार रहे हो बेटा?'

सिपाहियों ने कहानी सुनायी...

बुढ़िया ने कहा, 'लगता है राजकुमार अस्थिर चित्त का है... कल अगर कहे कि इस आदमी को लाओ, तब?'

वे एक-दूसरे का मुंह देखने लगे! 'तुम लोग भी मारे जाओगे.'

'रास्ता?' उन्होंने हत्प्रभ होकर पूछा.

'इसे जंगल पार इसी गांव में छोड़ दो. बुढ़िया ने रास्ता सुझाया,' किसी जानवर को मारकर राजकुमार को उसका कलेजा दिखा देना. ...!

●●●

रानी रूपमती खुश थी. मगर सुमंगल की हत्या के बाद से चंद्रसेन और अकेला और उद्भ्रांत हो गया था. पहले तो वह अपने मन की कई जिज्ञासाओं का शमन सुमंगल के साथ कर लेता था, पर अब उसे राजमहल का जीवन नीरस लगता था विवाह! विवाह!! विवाह!!!

वह इस सवाल से बचने के लिए शिकार में ही उलझा रहता. एक शाम शिकार से लौटते हुए सुवर्णा नदी किनारे उसने एक सोने से लदी, सुंदर रत्नजड़ित नाव देखी. उस पर एक सुंदर लड़की बैठी हुई थी, जैसे ही वह किनारे पहुंचा, लड़की ने उसपर हल्दी का टुकड़ा फेंका, जूते पटके और शंख बजाया...

वह लपका, लेकिन बिना नाविक के वह नाव तेज़ी से चलती हुई नदी में गायब हो गयी. चंद्रसेन ठगा रह गया. इसके बाद भी कई दिनों तक वह सुवर्णा नदी के किनारे ही शिकार करता रहा. मगर न वह नाव दिखी और न शंख वाली लड़की... हल्दी क्यों फेंकी? जूते पटकने का राज? शंखनाद? प्रश्नों के उत्तर कल्पना के कंटक कानन में भटक जाते थे. उसने राज्य के सभासदों से पूछा, तो वे हंस पड़े. वह अपने प्रश्नों के साथ दुखी रहने लगा. खाना-पीना सोना-जागना सब अव्यवस्थित! आज अगर उसका मित्र सुमंगल रहता तो उसे यह दिन नहीं देखना पड़ता!

उसने सिपाहियों को बुलाकर कहा, 'सुमंगल को खोज कर लाओ?'

'वह आपके आदेश से मारा जा चुका है राजकुमार...'

'तो उसे मेरे आदेश से ज़िंदा करो.'

●●●

बुढ़िया की बात सच निकली!

सुमंगल मरा नहीं था, इसलिए लौट आया.दोनों मित्र गले मिले. चंद्रसेन ने सारी कहानी सुनायी...

हल्दी फेंकी थी उसने... वह बोला 'मतलब?'

'मतलब साफ है...' सुमंगल ने कहा, 'हल्दीपुर की होगी...'

'मित्र उसने जूते क्यों पटके?'

'रास्ता कठिन है... संभल कर जाना है'

'नाव पर नाविक नहीं था?'

'स्वयं जाना है वहां... किसी को लेकर नहीं...'

'शंख बजाने का मतलब?'

'वह बुला रही है...'

'तो चलो,'

'चलो.'

●●●

जाते-जाते दुनिया मिलती है. गांव नदी, घाट. हल्दीपुर सुंदरपुर से भी सुंदर. महीनों बाद वे यहां पहुंचे थे. उद्यान के बाहर घोड़े बांधकर अंदर गये. उद्यान सुंदर था. मगर फूल एक भी नहीं. नहा-धोकर उन्होंने गौरी-शंकर के मंदिर में पूजा की. सारे फूल खिल गये. मालिन जब आयी, तो बहुत खुश हुई.

दो अतिथियों को उद्यान में देखकर उसने प्रयोजन पूछा. सुमंगल ने कहानी सुनायी, 'मौसी उस लड़की का नाम क्या हो सकता है? कहां मिल सकती है?'

'बेटा नाम उसका स्वर्णपरी है यानि सोनपरी. वह हल्दीपुर के राजा की बेटी है... फूंक से धूमन जलाती है, ... मिट्टी से फूल... कंकड़ से प्रसाद...'

भेंट कैसे होगी मौसी?'

'यह काम असम्भव है, राजमहल में कोई बाहरी आदमी कैसे जा सकता है, पकड़े जाने पर सूली लग सकती है...' उसने डर कर कहा.

'फिर उपाय?'

'ऊपर वाले की मर्जी...'

...दूसरे दिन वह मालन ढेर सारे फूल लेकर राजमहल गयी.

राजा रानी के बाद वह राजकुमारी के पास गयी और राजकुमारी को उसने प्रकारांतर से दो अश्वारोहियों की कहानी सुनायी...'

राजकुमारी ने सेविका से कहा, 'इसे पांच किलो अपरूप चावल, पांच मोहर और कदली के पांच पत्ते दे दो...'

●●●

मालिन उदास होकर लौट आयी. कहानी सुनकर सुमंगल उदास होने की बजाये खुश हुआ. कहा, 'मित्र तुम्हें कदली वन में बुलाया है...'

मालिन ने रास्ता बताया. चंद्रसेन दूसरे दिन कदली वन गया.

काफी इंतज़ार किया. फिर उसे नींद आ गयी... राजकुमारी नहीं आयी, मगर उसके कपड़े पर पान का दाग देख कर

सुमंगल ने राजकुमार चंद्रसेन को उसकी गलती का अहसास कराया. राजकुमारी आयी भी और चली भी गयी...

'अब?'

मौसी जाने को तैयार नहीं थी, मगर जिद्द पर गयी. उसे जान का डर लग रहा था. इस बार भी वही सब हुआ, मगर सेविका ने आम्र के पांच पल्लव दिये.

सुमंगल ने कहा, 'मित्र आम्रकुंज में सोना नहीं... अगर अनुमति दो, तो मैं भी छिप कर चलूं...'

'चलो...'

●●●

आम्रकुंज सोनपरी से चंद्रसेन की मुलाकात हुई.

लेकिन प्रहरियों ने राजकुमारी और चंद्रसेन को पकड़ लिया और एक प्रासाद में बंद कर राजा को संदेश दिया. सुमंगल ने जान पर खेल कर राजकुमारी को आज़ाद कराया और खुद को चंद्रसेन के साथ बंद कर लिया. राजा के आगमन पर जब प्रासाद को खोला गया, तो उसमें दो राजकुमार नजर आये. प्रहरियों को आश्चर्य हुआ. दरअसल सुमंगल उस प्रासाद में ही छिपा हुआ था. कालांतर में सुमंगल की सूझबूझ और बुद्धिमत्ता के कारण स्वर्णपरी से चंद्रसेन का और सेविका फूलमणि से सुमंगल का विवाह हुआ.

इस तरह दादी की कहानी एक सही अंत पर आकर खत्म हुई. नदी, नाव, हल्दी, शंख सबका संदर्भ समझ में आया. मगर आज? आज मुश्किल यह है कि कहानी किसी सही अंजाम पर आने से पहले ही दम तोड़ देती है. लोग कहते हैं कि हमारा समय-समाज ही विघटनकारी हो गया है, पर मुझे लगता है कि हमारी कल्पनाशीलता को ही काठ मार गया है... या फिर कल्पनाशीलता को आज कहानी में कोई बढ़िया नहीं मानता. अविश्वसनीयता बढ़ जाती है... पर जिस पर विश्वास हो उसे ही कहानी कैसे कहा जाये? दादी की कहानी अविश्वसनीय लगे, पर कहानी तो लगती है, उस कहानी का क्या जो विश्वसनीय तो लगती है, पर कहानी नहीं लगती! उसकी कहानी लगती झूठ, होती सच! होती सच! लगती झूठ! कोई कहे काला कम्बल उजला करो, कोई कहे चालनी में पानी भरो! तो कोई कहे, कंकड़ से चावल बनाओ, सब काम होता. हम अचरज से भर जाते. ऊपर से सौ आफतें! कहीं रानियों का कुचक्र! तो कहीं दासियों का खेल, तो कहीं भाभियों का षड्यंत्र.

●●●

उस कहानी का क्या जो विश्वसनीय तो लगती है, पर कहानी नहीं लगती! उसकी कहानी लगती झूठ, होती सच! होती सच! लगती झूठ! कोई कहे काला कम्बल उजला करो, कोई कहे चालनी में पानी भरो!

बासमती! बासमती खोलो किवाड़
सातो भैया लागल दुआर...

बासमती दरवाजा खोलने आती है... कि उसके सातों भाई आ गये हैं... तभी कोई सुग्गा, कोई मैना कोई कहता- बासमती-बासमती मत खोलो किवाड़. ... बासमती का हाथ सत के बज्जड़ दरवाज़े पर ठिठक जाता है... वह समझ जाती है दैत्य आये हैं. ...एक अनोखा पात्र अचानक दादी की कहानी में देवदूत की तरह प्रकट होता और सब खेल बदल जाता. भले आप माने या न मानें. सुमंगल और चंद्रसेन को हल्दीपुर में मौसी मिल जाती है. फिर तीनों मिल कर इस बात का प्रमाण देते हैं कि चंद्रसेन सुंदरपुर का राजकुमार है. प्रमाण तो दादी भी देती थी, एक से बढ़ कर एक!

काठ का घोड़ा, पाठ का लगाम
पानी पीयो रे... पीयो...!

काठ का घोड़ा पानी कैसे पीयेगा दादी? रानी भी तो यही बोली बेटा, तो? तो लड़का बोला, 'आदमी का बच्चा ईंटा-पत्थर कैसे होगा?'

मतलब? मतलब क्या? किस्सा गया बिल में, सोचो अपने दिल में? हर कहानी का अपना मर्म! नयी भाषा जो आत्मा को छू जाती!

●●●

हम दूसरे दिन फिर घेरकर बैठ जाते. हम जानते थे दादी की कहानी कभी खत्म नहीं होती. वहां कहानी से कहानी निकलती. हम जिद्द करते, वह नादान बन कर कहती, 'कह तो दिया. अब क्या.'

'हमारी, तो कुछ समझ में नहीं आया दादी...?'

'तो मैं क्या करूं...?' वह थोड़ा बहाना बनाती.

अब आज वाला जमाना तो था नहीं टीवी. मोबाइल वाला. हम मनाते. पैर दबाते, हाथ दबाते. दादी ही हमारी कल्पना में रंग भरने वाली रंगसाज थी. वह गाती, तो हमारे भीतर कोई गाता, हंसती तो हंसता, उड़ती, तो उड़ता, रोती, तो रोता, नदी, पहाड़, जंगल, झरने, चिड़ी-चुनमुन का एक पूरा संसार हमारे अंदर खुलता. ...

'तो सुनो!' वह बिसुरते हुए कहानी के बिखरे तार जोड़ती...

किसी नगर में एक राजा था... कहानी की बंद पिटारी खुलने लगती... उसकी सात रानियां थीं. राजा का राज-पाट बहुत बड़ा. मगर उसकी कोई संतान नहीं थी. राजा दुखी रहता था, उसको यह चिंता लगी रहती थी कि उसके मरने के बाद राज-पाट का क्या होगा... कौन चलायेगा राज-काज? सो वह जंगल जाकर तपस्या करने लगा. उसकी कठोर तपस्या से एक दिन भगवान का दिल पसीज गया. भगवान ने एक साधु का भेष बनाया और कहा, 'आंखें खोलो राजन...?'

राजा ने आंखें खोलीं.

'राजन महल के सुख-भोग को छोड़कर

इस कंटक-कानन में तपस्या क्यों कर रहे हो ? अब और क्या चाहिए तुम्हें... ?' साधु ने आश्चर्य से पूछा.

'महात्मा! मेरी सात रानियां हैं, मगर मैं नि:संतान हूं...' वह दुखी होकर बोला.

'ऐसा है, तो ये सात फल लो, और एक-एक कर अपनी रानियों को खिला देना, तुम्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति होगी.' साधु ने उसे फल दिये.

राजा की खुशी का ठिकाना नहीं रहा. राजमहल आकर उसने एक-एक फल सातों रानियों को दिये. सबने फल खाये. मगर ऐसा हुआ कि गर्भ सिर्फ छोटी रानी को ठहरा...'

'क्यों ?' हम में से कोई पूछता.

'अब सुनो तो, भगवान की माया भगवान जाने!' दादी कहानी को रहस्य दबा कर कहती, 'राज को जब पता चला, तो वह छोटी रानी पर बड़ा प्रसन्न हुआ. दास-दासियों के साथ आमोद-प्रमोद की खूब व्यवस्था की... उधर बाकी रानियों का मान गिरता चला गया. राजा शिकार से आता, तो सीधे छोटी रानी के पास जाता.

एक दिन छोटी रानी ने कहा, 'राजन आप शिकार पर चले जाते हैं. राजमहल में मैं अकली रह जाती हूं. डर लगता है, अगर प्रसव की पीड़ा हुई, आप जंगल में रहे तो ?'

राजा परेशान हुआ. फिर उसने कुछ सोच कर महल के बीचो-बीच एक घंटा बंधवाया और कहा, 'जब तुम्हें ऐसा लगे, बजा देना प्राणेश्वरी, मैं तुरंत लौट आऊंगा...'

रानी ने एक दिन घंटा बजाया, तो राजा हड़बड़ा कर लौट आया.

'क्या हुआ ?' उसने आते ही पूछा.

'मैं परीक्षा ले रही थी.' रानी घबड़ायी.

राजा हंसा, 'धत्! इतना डरती हो.'

'राजा बड़ा दिमाग वाला था दादी...'

दादी कहती, 'खाक दिमाग वाला था. घंटी न लगी, छोटी रानी का भाग फूटा! दूसरी-तीसरी रानियां उससे जली हुई थीं, सो कोई न कोई घंटी बजा देती. राजा लौटता और गुस्सा होता. एक दिन तंग आकर उसने कहा, 'अब सच में भी बजाओगी, तो भी नहीं आऊंगा...'

रानी क्या बोले. वह कहती रही कि वह नहीं बजाती है, पर राजा क्यों माने. एक दिन वही हुआ. रानी को प्रसव की पीड़ा हुई. उसने खूब घंटी बजायी. राजा नहीं आया. रानी दर्द से बेहोश हो गयी, राजा जब शाम को लौटा, तो बच्चे की जगह ईंट-पत्थर का एक

दादी कहती, 'खाक दिमाग वाला था. घंटी न लगी, छोटी रानी का भाग फूटा! दूसरी-तीसरी रानियां उससे जली हुई थीं, सो कोई न कोई घंटी बजा देती. राजा लौटता और गुस्सा होता.

टुकड़ा देखा… वह बहुत नाराज हुआ. बाकी रानियों ने भी नमक-तेल लगाकर कहा, 'अभागिन ने जन्म दिया तो पत्थर छि: राजा की जग हंसाई होगी, सो चुपके से पत्थर को फिंकवा दिया गया.'

'हे भगवान' कोई कहता, 'साधु भी ठग निकला… कहानी खत्म हो गयी दादी?'

हां, जुग बीत गया. राजा की सभी रानियां बूढ़ी हो गयीं… 'एक बार सभी तीर्थ पर थीं. रास्ते में नदी पड़ी. राजसी नाव लगी थी घाट पर… रानियां नाव पर चहक रही थीं… वहीं नदी किनारे काठ के घोड़े पर, पाठ का लगाम लगाये एक लड़का खेल रहा था. वह बार-बार किनारे आकर कहता, 'काठ का घोड़ा पाठ का लगाम, पानी पीयो रे पीयो…' किसी ने व्यंग किया, 'कितना बेवकूफ है यह कुम्हार का लड़का, काठ का घोड़ा कहीं पानी पीता है…'

बालक ने हंस कर कहा, 'आदमी ईंटा-पत्थर जनम दे सकता है, काठ घोड़ा पानी नहीं पी सकता क्या?'

छोटी रानी को छोड़कर सभी रानियां हंस पड़ीं.

'क्यों?' हम में से कोई पूछता.

'क्या पता?' दादी कहती, 'तीर्थ से लौट कर छोटी रानी ने खटवास-पटवास लिया. बात राजा तक पहुंची. राजा भी इस दुस्साहस पर गुस्सा हुआ. बालक को उसकी अवज्ञा के कारण पकड़ कर लाया गया. सिपाहियों ने उसे घेर रक्खा था.

'बालक?'

'जी राजन!'

'काठ का घोड़ा पानी पीता है?'

'नहीं.'

'फिर तुमने मजाक क्यों किया?' राजा का स्वर कठोर था,

'वह आप सोचिए' बालक ने कहा, 'क्या कोई स्त्री ईंट-पत्थर जन सकती है? अगर जन सकती है, तो काठ का घोड़ा पानी क्यों नहीं पी सकता?'

'राजा चौंका. उसने बालक के माता-पिता को बुलवाया. सतराम और सतमणि ने कहा कि बालक, काष्ठ की मंजूषा में उसी घाट पर मिला था… उसे पाला-पोसा, पर वह उसका लड़का नहीं है… इतना ही नहीं एक दिन एक साधु ने नदी पार करते हुए कहा, …इसे तुम एक काठ का घोड़ा बना देना.'

'मतलब?'

'अब मतलब तुम लोग भी तो समझो बाबू! यह सारी कारस्तानी उन निपूती रानियों की और दासियों की थी… समझे!'

'ऐ…?' हम अवाक रह जाते. दादी की कहानी जब समझ में आती, तो हम रोमांच से भर जाते… दुख-सुख की बात समझ में आती. आज मुद्दत बाद भी सोचता हूं. तो दादी की कहानी घंटी की तरह बजती है मन में… रस-मिश्री की तरह घुलती हुई… ❑

उर्दू कविता के आइने में भारत

● प्रमोद शाह

उर्दू भाषा हमारे अपने देश में पैदा हुई एक ऐसी ज़बान है, जिसमें साधारण से साधारण बात भी कही जाए तो बड़ी अनूठी लगती है और वह बात जब मुहब्बत व तहज़ीब की हो तो इसका जादू सिर चढ़कर बोलता है. इसकी वजह है कि खड़ी बोली में शुरू में अरबी, तुर्की और फारसी शब्दों को मिलाया गया, जो खुसरो के ज़माने में रेख्ता कहलायी और फिर हिंदवी होते हुए आज की उर्दू बनी.

ईरान का सूफी खयाल तेरह सौ ईस्वी में मुसलमान सूफियों के साथ हिंदुस्तान में आया. उस समय तक उपनिषदों का दर्शन अद्वैतवाद के रूप में आदि शंकराचार्य के प्रादुर्भाव के साथ एक बार फिर बड़े पैमाने पर विद्वानों को प्रभावित कर चुका था. इन दोनों विचारधाराओं में एक तारतम्य नज़र आया, जिससे दोनों संस्कृतियों के मिलाप का एक सूत्र मिला. और शायद यहीं से मिली-जुली संस्कृति का श्रीगणेश भी हुआ.

खड़ी बोली के आदि कवि अमीर 'खुसरो' उक्त युग का प्रतिनिधित्व करते हैं. हालांकि उन्होंने मजबूरीवश बादशाहों की प्रशंसा में मसनवियां लिखी थीं, किंतु उनका मन इस बात से खुश नहीं था. अतएव खुसरो ने स्वांतः सुखाय तथा अपने गुरु हजरत निज़ामुद्दीन औलिया की स्तुति में वे रचनाएं भी कीं, जो कालजयी साबित हुईं. उन रचनाओं में आम आदमी की संस्कृति, उसकी ज़िंदगी, उसके आस-पास के वातावरण का चित्रण मिलता है. उन्होंने जहां एक तरफ 'काहे को ब्याही बिदेश रे लखि बाबुल मोरे' जैसी पंक्तियां हमें दीं, वहीं 'बहुत कठिन है डगर पनघट की/कैसे भर लाऊं मैं मधवा से मटकी'–जैसी रचनाओं से भी मालामाल किया.

उर्दू कविता में भारतीय संस्कृति या देव-चरित्रों के वर्णन पर दृष्टिपात करने से पहले 'ख़ुसरो' द्वारा अपने पुत्र गयासुद्दीन को दी गयीं तीन नसीहतों पर गौर करने से इस विषय को समझना बहुत आसान हो जाएगा. उन्होंने कहा–

'जहां तक हिंद की तहज़ीब का सवाल है, वैसी तो दुनिया में शायद ही किसी और मुल्क की हो...

हिंद की आबो-हवा, यहां के फल-फूल वगैरह ऐसे निराले हैं कि पूरे जहान में इनका कोई सानी नहीं. हिंद एक लाजवाब मुल्क है. मैं हिंद का हूं, हिंद मेरा है, मेरा प्यारा वतन है. वतन के तईं प्यार ही मेरा ईमान है. खुद हजरत मुहम्मद साहब ने कहा है 'वतन-परस्ती ईमान की निशानी है.' मैं एक ईमानदार वतन-परस्त रहकर हिंद की मिट्टी में मिल जाना चाहता हूं.

गयास बेटे, मैंने तो हिंद की खाक को अपनी आंखों का सुरमा बना लिया है, इसलिए तुम्हें सबसे पहली नसीहत यही देना चाहता हूं कि तू भी हिंद को ही अपना सब कुछ समझना.

दूसरी नसीहत यह है कि, क्योंकि तू भी शायरी करने लगा है इसलिए मैं चाहूंगा कि, हिंदवी ज़बान में ही शायरी करना.

तीसरी नसीहत यह कि अपनी शायरी का कोई भी हिस्सा शाहों की खुशामद में बरबाद मत करना, जैसे मैंने किया. मैं चाहता हूं तू हिंद के आम लोगों में घुलमिलकर उसकी रूहों की आवाज़ को सुन और फिर उस आवाज़ को अपनी शायरी की रूह बना ले.'

'ख़ुसरो' की नसीहतें उनके बेटे गयासुद्दीन ने मानने का वादा किया लेकिन उसके बाद यह सिलसिला सोलहवीं शताब्दी में अकबर बादशाह के युग में ज़ोर पकड़ता हुआ दिखाई देता है. तत्पश्चात् उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध व बीसवीं सदी में तो मिली-जुली संस्कृति अपने पूरे यौवन पर दिखाई देती है उर्दू शायरी में.

अमीर 'ख़ुसरो' से आरम्भ हुए इस सांस्कृतिक मिलाप के करीब 650-700 वर्षों के दौरान हम देखते हैं कि एक तरफ तो 'रहीम', 'रसखान' और 'जायसी' जैसे मुसलमान कवियों ने हिंदी में रचनाएं करके भारतीय संस्कृति व देव-चरित्रों का गुणगान किया तो दूसरी ओर तिलोकचंद 'महरूम', पं. ब्रजनारायण 'चकबस्त', रघुपति सहाय 'फ़िराक़' गोरखपुरी, पं. आनंद नारायण 'मुल्ला', जगन्नाथ 'आज़ाद', दयाशंकर दूबे 'नसीम' व दर्शन सिंह दुग्गल जैसे हिंदू शायरों ने उर्दू भाषा में इसे आगे बढ़ाया.

उधर जहां 'नज़ीर' अकबरबादी के यहां हिंदू त्यौहारों, धार्मिक कथाओं और चरित्रों का सरस व अद्वितीय वर्णन हुआ है, वहीं 'अनीस' के मर्सिये हिंदुस्तानी समाज का चित्र पेश करते हैं. 'अनीस' ने इमाम हुसैन की लड़की और भतीजे की शादी के मौके पर हिंदुओं के संस्कार बयान किये हैं. संदल, मेहंदी, हल्दी, नथ, कंगना, सेहरा, इत्यादि खालिस हिंदुस्तानी चीज़ें हैं. दूल्हे के सिर पर बहनों द्वारा अपना आंचल डालना खास हिंदुस्तानी रस्म है. दयाशंकर 'नसीम' की 'किस्सा-ए-गुल बकावली' में हिंदुस्तानी तत्वों की कितनी ही झलकियां मौजूद हैं. 'गालिब'

ने अपने कसीदे की तशबीब में, जो हजरत अली की स्तुति में है, तसव्वुफ और वेदांत के उस दृष्टिकोण को पेश किया है जो सृष्टि के प्रारम्भ के बारे में है.

मुहम्मद अफ़ज़ल की 'सावन', 'भादो', मीर तकी 'मीर' की 'बयाने-होली' और नज़ीर की 'होली', 'बसंत', 'राखी', 'दिवाली' व अन्य त्यौहारों के लिए लिखी गयी कविताएं आज भी मन को छू जाती हैं. इस विषय पर जांनिसार 'अख्तर' की रुबाइयों की अपनी अलग अहमियत है, उनका स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है.

धार्मिक कथाओं में 'नज़ीर' की 'जनम कन्हैयाजी', चकबस्त की 'रामायण का एक सीन', मुंशी बनवारी लाल 'शोला' की 'सीता-हरण' और मुनव्वर लखनवी की 'कृष्ण और राधा की मुलाकात', इत्यादि रचनाओं में मौलिक पौराणिक कथाओं के आनंद-जैसी अनुभूति होती है.

'फ़िराक' गोरखपुरी की शायरी में भारतीय संस्कृति के चित्रण से उर्दू कविता में नये दौर का सूत्रपात हुआ. उनकी 'हिंडोला' नज्म में तो पूरी भारतीय संस्कृति झूलती हुई, हिंडोले लेती हुई दिखाई देती है. 'रूप' की रुबाइयों के बारे में भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू ने यहां तक कहा था कि 'रूप की रुबाइयों में बुद्धकाल, मुसलिम युग और टैगोर युग से लेकर आज तक की भारतीय संस्कृति अपनी झलकियां दिखाती हुई नज़र आती है.' उनकी एक मशहूर नज्म 'अय मादरे-हिंद' का एक बंद देखें :

तहजीब की पहली सुब्ह की पाक दुआएं
गूंजी हुई है फ़ज़ा में ऋषियों की सदाएं
ऐ गंगो-जमन की गुनगुनाती लहरों
देती हैं सुनाई तुममें वेदों की ऋचाएं

'फ़िराक' की शायरी में दर्शन की गहराइयों के साथ-साथ पौराणिक चरित्रों व कथाओं के प्रतीकों में गूंथे गये अनूठे विचार भी मिलते हैं. उनके अनुसार 'हिंदू संस्कृति के दर्शन न केवल रामायण व महाभारत की कथाओं में, गीतों में, नहानों के मेलों में, त्यौहारों में, लोक-गीतों में होते हैं, बल्कि घरों में चूल्हा-चक्की, पानी से भरे हुए मिट्टी के घड़े, दीवारों पर बने हुए ताक, मिट्टी के घरौंदे, मूंज की बनी हुई टोकरियां, खाना पकाने के बरतनों, दीपकों, खिलौनों व छोटी-छोटी रस्मों में भी इस संस्कृति के नज़ारे देखने को मिलते हैं. यही दिव्यता, हृदयग्राह्यता, अकथनीय मान्यताओं की अनुभूति, साधारण में असाधारण की झलक, यही अपनत्व शायद हिंदू

यह सही है कि व्यावसायिकता के पुट व काव्यात्मक तत्वों के अभाव के कारण फिल्मी गीत साहित्य का दर्जा नहीं पाते हैं, किंतु कुछ रचनाएं ऐसी होती हैं कि उन्हें साहित्य न मानने की वजह समझ में नहीं आती.

संस्कृति का रहस्य है.'

हिंदू संस्कृति ही क्यों, मुस्लिम तहजीब का भी बहुत खूबसूरत वर्णन हुआ है उर्दू में. 'फ़िराक' ने सही कहा है कि 'जब हम भारतीय संस्कृति का ज़िक्र करते हैं तो हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि संस्कृति केवल भारतीय हुआ करती है, न कि केवल हिंदू या केवल मुस्लिम हुआ करती है.' अत: उर्दू में केवल हिंदू संस्कृति ही नहीं बल्कि मुस्लिम संस्कृति का भी स्वागत, न केवल मुस्लिम बल्कि हिंदू शायरों ने भी खुले दिल से किया है.

यदि जगन्नाथ 'आज़ाद' की 'जामा मसज़िद, देहली', 'सीमाब' अकबराबादी की 'जामा मस्ज़िद, आगरा' में इन पवित्र स्थलों का अति दिव्य वर्णन हुआ है तो दर्शन सिंह दुग्गल की 'हजरत मुहम्मद', 'आवाज़े – हक' व 'महबूबे – इलाही' में क्रमश: हजरत पैगम्बर मुहम्मद, हजरत ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती व हजरत निज़ामुद्दीन औलिया के हुजूर में उन्होंने जो सज्दे किये हैं– वे काबिले तारीफ हैं.

डॉ. इकबाल की 'हिमाला', 'साक़िब' कानपुरी की 'गंगा-स्नान', 'सागर' निज़ामी की 'जमना', पं. आनंद नारायण 'मुल्ला' की 'गंगा के चिराग', 'राही' मासूम रज़ा की 'गंगा', हामिदुल्ला 'अफ़सर' मेरठी की 'संगम', अली सरदार जाफ़री की 'मौसम के गीत' एवं अख्तर शीरानी की 'ओ देस से आनेवाले बता'– जैसी ग़ज़लों-नजमों में प्रकृति के माध्यम से भारतीय संस्कृति का बेजोड़ वर्णन हुआ है.

जोश मलीहाबादी की 'वतन', 'फ़िराक' गोरखपुरी की 'अय मादरे-हिंद', पं. आनंद नारायण 'मुल्ला' की 'ज़मीने-वतन', अली सरदार ज़ाफरी की 'यह हिंदोस्ता' और 'जांनिसार' अख्तर की 'बाद : ए वतन' में भारत-महिमा के जो शगूफे खिलाये गये हैं, वे देखते ही बनते हैं.

जनाब अली सरदार जाफ़री द्वारा संकलित व सम्पादित 'मीरा' तथा 'कबीर' नामक पुस्तकें भी इस सिलसिले में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं. इनकी भूमिकाओं में संस्कृति को जिस कोण से देखा गया है, जिस दृष्टि से निखारा गया है, जो ऊंचाइयां दी गयी हैं, वह जाफ़री साहब की अपनी शैली का कमाल है, अपना अंदाज़ है और वह बेमिसाल है. उनके चिंतन, अध्ययन और मनन का निचोड़ दृष्टिगोचर होता है वहां. साथ ही यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि संतों, फकीरों व कवियों के विचार ही आम आदमी की चेतना को उर्ध्वगामी दिशा दे सकते हैं, एक मिलन-भूमि दे सकते हैं.

एक बात और, जो साहित्य और

संस्कृति की चर्चा के दौरान शायद बेतुकी लगे, मगर उसकी चर्चा के बिना विषय के साथ न्याय नहीं होगा. यह सही है कि व्यावसायिकता के पुट व काव्यात्मक तत्वों के अभाव के कारण फिल्मी गीत साहित्य का दर्जा नहीं पाते हैं, किंतु कुछ रचनाएं ऐसी होती हैं कि उन्हें साहित्य न मानने की वजह समझ में नहीं आती. मसलन, निम्नलिखित पंक्तियों में 'साहिर' लुधियानवी ने दोनों संस्कृतियों के मिलाप की इतनी पुरजोर वकालत की है कि बरबस मुंह से 'वाह!' निकल पड़ता है :

अब कोई गुलशन न उजड़े, अब वतन आज़ाद है
रूह गंगा की, हिमालय का बदन आज़ाद है
मंदिरों में शंख बाजे, मसजिदों में हो अजान
शेख का धरम और दीने-बिर्‌हमन आज़ाद है

भारतीय संस्कृति के अहम किरदारों में से तीन महत्त्वपूर्ण चरित्र 'शिव', 'राम' और 'कृष्ण' की प्रशंसा के मोती भी उर्दू में पिरोये गये हैं.

मुनव्वर लखनवी ने 'शिवजी की तारीफ़' में कालीदास रचित 'कुमार सम्भव' का अनुवाद बहुत ही खूबसूरत किया है. एक अंश प्रस्तुत है–

चांद आधा है नमूदार ज़बीं पर जिनकी
कौसे-जरी है जौबार ज़बीं पर जिनकी
जिनकी अज़मल का ठिकाना नहीं, नामी जो है
जगत ईश्वर है जो, संसार का स्वामी जो है
जिनके दीदार की रखते हैं, तमन्ना जोगी
ध्यान करते बड़े शौक से जिनका जोगी
मोक्ष जो मोक्ष के तालिब को अता करते हैं
रूह का कैदे-तनासुख से रिहा करते हैं
शिव का विषपान तो सुना होगा
मैं भी ऐ दोस्त पी गया आंसू

'शिव' का ज़िक्र हो और 'राम' की बात न चले यह कैसे सम्भव हो सकता है? 'राम' ने उर्दू शायरों को हमेशा प्रभावित किया है मसलन–

डॉ. इकबाल ने 'राम' को 'इमामे-हिंद' माना है अर्थात् भारत का नेता, हिंद का अग्रगामी.

हे राम के वज़ूद पे हिंदोस्तां को नाज़
अहले-नज़र समझते है उसको इमामे-हिंद

जाफ़र अली खां ने 'श्री रामचंद्र' गजल में 'राम' द्वारा आज्ञा-पालन का सम्बंध इस्लाम से जोड़ा है–

न तो नाक़ूस से है और न असनाम से है
हिंद की गर्मी-ए-हंगामा तिरे नाम से है
मैं तेरे शेवः ए-तसलीम पे सिर धुनता हूं
कि यह इक दूर की निस्बत तुझे इस्लाम से है
नक्शे तहज़ीबें-हुनुद अब भी नुमाया है अगर
तो वह सीता से है, लक्ष्मण से है और राम से है

'सागर' निज़ामी ने 'राम' को इंसान के रूप में साकार ब्रह्मज्ञान माना है और उन्हें सर्वकालिक बताया है–

हिंदियों के दिल में बाकी है मुहब्बत राम की

मिट नहीं सकती कयामत तक हुकुमत राम की
ज़िंदगी की रूह था, रूहानियत की शान था
वो मुजस्सम रूप में इंसान के इरफ़ान था

पूरे युग की पीड़ा को 'फ़िराक़' ने राम-सीता रूपी प्रतीकों के माध्यम से क्या खूब समेटा है :

हर लिया है किसी ने सीता को
ज़िंदगी है कि राम का वनवास

और कैफ़ी आज़मी ने सन् '62 में चीनी आक्रमण के वक्त इन चरित्रों के माध्यम से देश के युवाओं को एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी सौंपी थी जो आज भी उतनी ही सामयिक है–

खेंच दो अपने खूं से ज़मीं पर लकीर
इस तरफ आने पाये ना रावन कोई
तोड़ दो हाथ अगर हाथ उठने लगे
छूने पाये न सीता का दामन कोई
राम भी तुम, तुम्हीं लक्ष्मन् साथियो
अब तुम्हारे हवाले वतन साथियों

'कृष्ण' के चरित्र ने भारत की सभी भाषाओं के कवियों को हर युग में प्रेरित किया है. एक तरफ उनका बालपन, नटखट स्वभाव, उनकी बांसुरी की तान और दूसरी ओर गीता का संदेश. पूर्णावतार का एक अपूर्व वर्णन उर्दू शायर 'नज़ीर' अकबराबादी की कलम से देखिए :

मैं क्या-क्या वस्फ़ कहूं यारों, उस
श्यामवरन औत्तारी के
स्रीकिशन, कन्हैया, मुरलीधर, मनमोहन
कुंजबिहारी के
गोपाल, मनोहर, सांवलिया, घनशाम,
अटल बनवारी के
नंदलाल दुलारे सुंदर छबि, ब्रजचंद मुकुट
झलकारी के
कर धूम लुटइया दधि माखन, रनछोर
नवल गिरधारी के
बन कुंज फिरय्या रास रचन, सुखदाई,
कान्ह मुरारी के
हर आन दिखाये, रूप नये, हर लीला
न्यारी-न्यारी के
पत-लाज रखय्या, दुख-भंजन, हरभक्ती
भक्त अधारी के

'साहिर' लुधियानवी ने भी प्रेम, विश्वास व भक्ति की शाश्वतता का 'राधा', 'सीता' व 'मीरा' के माध्यम से बयान किया है.

एक बार फिर 'कैफ़ी' आज़मी के तेवर देखें, जिन्होंने एक नज्म 'फर्ज़' कहकर सन् '65 में पाकिस्तान के साथ युद्ध के समय 'कृष्ण' और 'अर्जुन' के प्रतीकों से युवा-चेतना को झकझोरा था. उस लम्बी नज्म के दो बंद पेश हैं–

और फिर कृष्ण ने अर्जुन से कहा–
ज़िंदगी सिर्फ अमल, सिर्फ अमल, सिर्फ अमल
और ये बेदर्द अमल सुल्ह भी है, जंग भी है,
अम्न की मोहिनी तस्वीर में हैं जितने रंग

उन्हीं रंगों में छुपा खून का इक रंग भी है
हम अहिंसा के पुजारी सही, दीवाने सही
जंग होती है फ़क्रत, जंग के ऐलान के बाद
हाथ भी उनसे मिले, दिल भी मिले, नज़रें भी
अब ये अरमान है, सब फ़तह के अरमान के बाद
साथियो, दोस्तो, हम आज के अर्जुन ही तो हैं
हमसे भी कृष्ण यही कहते हैं

'जांनिसार' अख्तर लिखते हैं 'फारसी रंग ने भी उर्दू को बहुत कुछ दिया है, जो सीने से लगाये रखने के काबिल है. लेकिन हम यह स्वीकार करते हैं कि आज उर्दू वालों को संस्कृत-साहित्य से बहुत लेना है.'

और 'फ़िराक' गोरखपुरी का यह मानना है कि–'हमारी उर्दू जबान में कितनी विशालता और कितनी बड़ी सम्भावनाएं पैदा हो जाएंगी, अगर उर्दू शब्द-कोश में दो-ढाई हजार संस्कृत के शब्द भी शामिल कर लिये जाएं. कितनी शक्ति और फैलाव, कितनी तहें, कितनी झलकियां और परछाइयां, कितना रस, कितनी सुगंध, कितना स्वाद, कितनी सुगढ़ता, कितनी नयी गूंजें, कितना सलीका, कितना प्रवाह और ठहराव, कितनी लोच और लचक उर्दू में पैदा हो जाएगी अगर संस्कृत शब्दों की किरनों की खनक भी अरबी, फारसी और हिंदी शब्दों की खटक, रस और झंकार के साथ साज़े-उर्दू से सुनायी देने लगे.' ❑

किसका काम ?

मां ने मुझे सिखाया था कि औरों की बात पर पत्थर को देवता मत कहना; और औरों की बात पर देवता को पत्थर भी मत कहना. जिसे देवता माना हो, दुख-क्षोभ के पल में उस पर अविश्वास न करना. पत्थर में रोशनी की झलक दिखते ही उसे रत्न न समझ लेना. झाड़ों के कांच पर सतरंगी आभा फूटती है; मगर वह माणिक नहीं, कांच है. संसार में विश्वास करके ठगे जाना ठीक नहीं. अविश्वास करके ठगे जाना ठीक नहीं. किसी पर एतबार करो और वह ठगे, तो क्षति तुम्हें होगी; लेकिन सिर ऊंचा ही रहेगा. मगर किसी पर अविश्वास करके यदि ठगे जाओ, जिसे चोर समझा हो, चह साधु निकल जाए, तो तुम्हारा सिर धूल में लोटेगा, अपने आप पर धिक्कार का अंत न रहेगा. **- ताराशंकर बंद्योपाध्याय (मेरा साहित्य जीवन)**
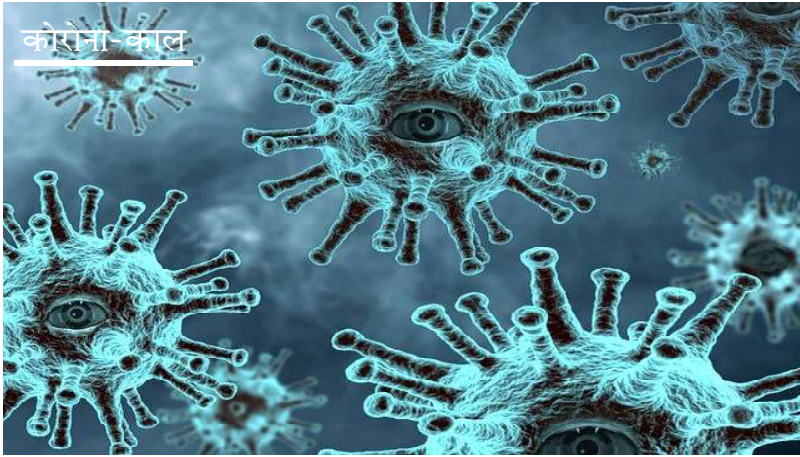
उन्होंने पहचान ली थी कोरोना की आहट

● प्रकाश हिंदुस्तानी

जॉर्ज बुश और बिल गेट्स जैसे लोग बहुत पहले से कोरोना जैसी महामारी की आहट पहचान गये थे. उन्होंने दुनिया को न केवल आगाह किया, बल्कि उससे निपटने की तैयारियां भी शुरू कर दी थीं. अगर यह तैयारी न होती तो आज हालात और भी ज़्यादा खतरनाक हो जाते. बिल गेट्स ने कहा था कि अब अगर लाखों लोगों के सामने मौत आयी तो वह किसी विश्वयुद्ध के कारण नहीं, बल्कि वायरस के कारण होगी. वायरस का खतरा विश्वयुद्ध के खतरे से कम नहीं है. यह बात अब हम तो क्या, पूरी दुनिया मानती है कि यह संक्रमण एक तरह का विश्वयुद्ध ही है.

पूरी दुनिया कोरोना (सार्स कोविद-19) वायरस के कारण त्राहि-त्राहि कर रही है. कई लोग समझ रहे हैं कि किसी को इस वायरस की भनक तक नहीं लगी. यह वायरस अचानक आया. ऐसा नहीं है. 2011 की स्टीवन सोडरबर्ग की फिल्म 'कन्टेजियन' एक खतरनाक वायरस पर आधारित थी जो जान लेने के लिए आमादा था. फिल्म की कहानी के अनुसार एक पिता-पुत्र की मौत के कारणों की जांच होती है तब पता चलता है कि एक खतरनाक वायरस के कारण ही दोनों की मृत्यु हुई थी. कहानी में बताया इस तरह का कोई वायरस

कभी भी वापस आ सकता है और ऐसे वायरस के कारण लाखों लोगों की जान जा सकती है.

2018 में केरल में नीपा वायरस का आतंक फैल गया था. इससे केरल के दो जिलों में 17 लोगों की जान गयी थी. इस सच्ची घटना से आइडिया लेकर मलयालम में 'वायरस' फिल्म बनायी गयी थी. एक युवक को अस्पताल में भर्ती किया जाता है. बुखार, सरदर्द और उल्टी के इलाज लिए. कुछ समय बाद ही उसका ख्याल रखने वाली नर्स को सांस लेना मुश्किल हो जाता है. पता चलता है कि यह कोई जानलेवा वायरस है. क्या यह चमगादड़ से फैला है? आतंकवादियों का हथियार है? या दवाई की कंपनियों के माफिया का हथकंडा? पूरे शहर में मरीज़ बढ़ने लगते हैं. कुछ वैज्ञानिक और डॉक्टर इस महामारी से टक्कर लेते हैं. इस फिल्म को फिल्मफेयर पुरस्कार भी मिल चुका है.

'द ग्रेट इन्फ्लुएंज़ा : द एपिक स्टोरी ऑफ द डेडली प्लेग इन हिस्ट्री' किताब को 2004 में जॉन एम. बैरी ने लिखा था. यह एक नॉनफिक्शन किताब है, जो 1918 के स्पेनिश फ्लू महामारी के बारे में है. यह किताब उस महामारी की समीक्षा में लिखी गयी है. स्पेनिश फ्लू से 1918 में दुनिया के 50 करोड़ से भी ज़्यादा लोग प्रभावित हुए थे. इस महामारी ने दुनिया भर में २ करोड़ से ५ करोड़ के बीच लोगों की जान ली थी. इतनी बड़ी संख्या में तो लोग पहले विश्वयुद्ध में भी नहीं मारे गये थे. इस महामारी में मरनेवालों की सही संख्या भी किसी को नहीं मालूम. माना जाता है कि स्पेनिश फ्लू पश्चिमी मोर्चे पर सैनिकों के तंग और भीड़ भरे ट्रेनिंग कैंपों में फैला. विशेष रूप से फ्रांस के साथ लगती सीमाओं पर स्थित खाइयों में प्रदूषित वातावरण ने इसके फैलने में मदद की. नवम्बर 1918 में जब युद्ध समाप्त हुआ और सैनिक घर लौटने लगे तो वायरस उनके साथ आया. उन दिनों हवाई जहाजों का चलन बहुत कम था, इसलिए यह धीरे-धीरे फैला. स्पेनिश फ्लू को इतिहास का सबसे बड़ा होलोकॉस्ट यानी नरसंहार कहा जाने लगा. असली तथ्य यह है कि इससे पीड़ित युवा और स्वस्थ लोग थे.

स्पेनिश फ्लू ऐसे वक्त में सामने आया था जब दुनिया विश्वयुद्ध से बाहर आयी ही थी और पब्लिक हेल्थ योजनाओं का विचार शुरूआती दौर में था. झुग्गी-झोपड़ियों और शहर के अन्य गरीब स्थानों पर वो लोग मारे गये जो कम पोषित थे. उन दिनों लोग रेल और स्टीमरों के जरिए यात्रा करते थे. इस कारण यह कई साल तक फैलता रहा. इतिहास की इस सबसे खराब महामारी के तमाम पहलुओं की जांच करती यह किताब बेहद चर्चित रही है,

क्योंकि इसने अमेरिका की सरकार को ऐसी किसी भी महामारी से निपटने के लिए प्रेरित किया था. इस किताब में लिखा था कि अमेरिकी प्रशासन ऐसी किसी आपदा के लिए तैयार है भी या नहीं? इसे अमेरिकी इतिहास की पृष्ठभूमि और चिकित्सा के इतिहास की किताब भी कहा जा सकता है.

अमेरिका के 43वें राष्ट्रपति थे जॉर्ज एच डब्ल्यू बुश. वे सीआईए के प्रमुख रह चुके थे. 2005 में वे छुट्टियां बिताने अपने रेंच में टेक्सस गये थे. वे अपने साथ इतिहासकार जॉन एम. बैरी की 2004 में प्रकाशित किताब 'द ग्रेट इन्फ्लुएंज़ा : द एपिक स्टोरी ऑफ द डेडली प्लेग इन हिस्ट्री' पढ़ने के लिए ले गये. छुट्टियों में उन्होंने किताब पूरी पढ़ी तो बेचैन हो गये, क्योंकि यह किताब करीब 1918 में फैले उसी स्पेनिश फ़्लू महामारी के बारे में थी जिसमें करोड़ों लोग मारे गये थे.

बुश जब छुट्टी से वापस राष्ट्रपति भवन आये तब उन्होंने आंतरिक सुरक्षा मामलों की टॉप सलाहकार फ्रैन टाउनसैंड को बुलवाया और उन्हें भी यह किताब पढ़ने की सलाह दी. बुश का सवाल था कि अगर ऐसी महामारी की नौबत अब आ जाए तो अमेरिका क्या करेगा? अमेरिका में किसी महामारी से निपटने की विस्तृत योजना की नींव तभी पड़ी. आज पंद्रह साल बाद भी अमेरिका में उन नियमों का पालन किया जा रहा है.

राष्ट्रपति बुश ने छह कैबिनेट सचिवों, शीर्ष अमेरिकी स्वास्थ्य अधिकारियों और विश्व स्वास्थ्य संगठन और संयुक्त राष्ट्र के निदेशकों के सामने 30 मिनट का भाषण दिया, जिसमें एक इन्फ्लूएंजा महामारी जैसी किसी भी जोखिम से निपटने के लिए संघीय योजना की रूपरेखा तैयार की. 1918 की महामारी में अमेरिका के करीब पांच लाख लोगों की मौत हुई थी. उस महामारी से सबक लेते हुए बुश ने तीन लक्ष्य निर्धारित किये– प्रकोपों का पता लगाना, टीकों का स्टॉक करना और आपातकालीन योजनाएं लागू करना. इतना ही नहीं दुनिया भर में फैलने से पहले प्रकोपों का पता लगाने की पहल के तहत, बुश ने संयुक्त राष्ट्र की बैठक में एक नयी अंतर्राष्ट्रीय साझेदारी की घोषणा की थी. अस्सी देश और नौ अंतर्राष्ट्रीय संगठन इस पहल में शामिल हो गये.

अमेरिका में बुश प्रशासन ने ऐसी आपातस्थिति के लिए 710 करोड़ डॉलर की व्यवस्था की. यह भी तय किया कि अमेरिका वैक्सीन और एंटीवायरल ड्रग्स जैसे टैमीफ्लू (ओसेल्टामिविर) और रिलैन्ज़ा (ज़ानामिविर) का स्टॉक करेगा और नयी वैक्सीन तकनीकों के विकास में तेजी लायेगा. अमेरिका का राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान वैक्सीन उद्योग के नेताओं

के साथ मिलकर सेल कल्चर तकनीक के लिए काम करने लगा. अमेरिका में सभी 50 राज्यों और प्रत्येक स्थानीय समुदाय में आपातकालीन योजनाएं बनायी गयीं.

लेकिन ट्रंप ने इसे गम्भीरता से नहीं लिया. एक वेबसाइट पॉलिटिको के अनुसार ट्रम्प ने नेशनल सिक्योरिटी काउंसिल की हेल्थ यूनिट को ही भंग कर दिया, जिसकी ज़िम्मेदारी ऐसी किसी महामारी में लीड करने की थी.

बुश की योजनाओं की अमेरिका में सराहना हुई और नेताओं ने उनका समर्थन किया. मैसाचुसेट्स के सीनेटर एडवर्ड केनेडी ने कहा कि बुश के प्रस्ताव को 'और मजबूत करने की आवश्यकता है.' यह सुनिश्चित करने के लिए अधिक खर्च का आह्वान किया गया कि अस्पतालों और अन्य स्वास्थ्य सुविधाओं में मरीजों की बाढ़ को संभालने की क्षमता हो. रिपब्लिकन नेता बिल फ्रिस्ट ने कहा, 'राष्ट्रपति का साहसिक और निर्णायक नेतृत्व आज इस मुद्दे का सामना करने की उनकी समझ को दर्शाता है।' यह भी कहा गया कि 'यह सार्वजनिक स्वास्थ्य में एक ऐतिहासिक दिन है.'

स्वास्थ्य और मानव सेवा विभाग ने राष्ट्रपति के भाषण के बाद, संघीय और राज्य योजना पर ध्यान केंद्रित करते हुए 396 पृष्ठ का महामारी फ्लू दस्तावेज जारी किया. यह मान लिया कि एक काल्पनिक बीमारी 9 करोड़ अमेरिकियों को बीमार कर सकती है और इस तरह की घटना में लगभग 20 लाख लोग तक मारे जा सकते हैं. उस समय बुश ने चेतावनी दी थी कि अगर हम महामारी का इंतजार करेंगे तो वह हमें तैयारी का समय नहीं देगी.

सन् 2009 में जब बराक ओबामा राष्ट्रपति बने तब उन्होंने पूर्ववर्ती सरकार की योजनाओं का ध्यान से मनन किया. ओबामा के शासनकाल में महामारी से जूझने के लिए एक प्लेबुक बनायी गयी थी कि महामारी फैले तो कब कब क्या-क्या कदम उठाए जाएं. हर स्थिति से निपटने की रूपरेखा तैयार थी. महामारी को अमेरिका की नेशनल सिक्योरिटी काउंसिल से जोड़ा गया था. उसके लिए काउंसिल में हेल्थ यूनिट बनायी गयी थी. यह प्लेबुक 2016 में इबोला महामारी के मद्देनजर तैयार की गयी थी, लेकिन ट्रंप प्रशासन ने इसे गम्भीरता से नहीं लिया. एक वेबसाइट पॉलिटिको के अनुसार ट्रम्प ने नेशनल सिक्योरिटी काउंसिल की हेल्थ यूनिट को ही भंग कर दिया, जिसकी ज़िम्मेदारी ऐसी किसी महामारी में लीड करने की थी.

ट्रंप प्रशासन लापरवाह रहा, लेकिन फिर भी पिछले साल उसने किसी ऐसी महामारी की आशंका को देखते हुए ट्रेनिंग

का सिलसिला शुरू किया. एक अमेरिकी अखबार के अनुसार इस ट्रेनिंग में कई परिदृश्य ऐसे थे जो आज बिल्कुल हूबहू अमेरिका के सामने हैं. उस समय कल्पना की गयी थी कि वायरस चीन से आयेगा और अमेरिका में मेडिकल सप्लाई की भारी कमी रहेगी. आज यह सब हो ही रहा है.

सन् 2014 में इबोला वायरस का हमला हुआ था. इबोला एक किस्म की वायरल बीमारी थी. इसके लक्षण थे अचानक बुख़ार, कमज़ोरी, मांसपेशियों में दर्द और गले में खराश. अगले चरण में उल्टी होना, डायरिया और कुछ मामलों में अंदरूनी और बाहरी रक्तस्राव. मनुष्यों में इसका संक्रमण संक्रमित जानवरों, जैसे, चिंपैंजी, चमगादड़ और हिरण आदि के सीधे सम्पर्क में आने से होता था. इसका संक्रमण संक्रमित रक्त, द्रव या अंगों के मार्फ़त होता.

यहां तक कि इबोला के शिकार व्यक्ति का अंतिम संस्कार भी खतरे से खाली नहीं होता था. शव को छूने से भी इसका संक्रमण हो सकता था. इबोला के संक्रमण के चरम तक पहुंचने में दो दिन से लेकर तीन सप्ताह तक का वक्त लग सकता. इसकी पहचान और भी मुश्किल थी. चमगादड़, सुअर और बंदर से आये इस संक्रमण के कारण कई देशों में लोगों ने दस्ताने पहनना शुरू कर दिया था. कई देशों ने अपनी सीमाएं सील कर दी थी. इसका संक्रमण रोकने के दावे किये गये, लेकिन इसकी दवा अब तक नहीं खोजी जा सकी है.

बिल गेट्स ने इस बीमारी से निपटने के लिए काफी बड़ी धनराशि दान की थी. शायद उन्हें इसकी गम्भीरता का अहसास था. बिल गेट्स ने भी 2015 में अपने टेड टॉक्स के प्रसिद्ध भाषण में कहा था कि दुनिया के हजारों निस्वार्थ स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं ने हमें इबोला के वैश्विक प्रकोप से बचा लिया– यह हमारी अच्छी किस्मत रही. संकट के दौर में हम जानते हैं कि हमें क्या बेहतर करना चाहिए था. इसलिए, अब समय है, हमारे सभी अच्छे विचारों को व्यवहार में लाने के लिए. हमें योजना बनाकर अनुसंधान में जुटना चाहिए. दवाइयां, टीके आदि बनाने में जुटना चाहिए. इसमें स्वास्थ्य कार्यकर्ता का प्रशिक्षण भी शामिल है. 'घबराने की ज़रूरत नहीं है... लेकिन हमें जानने की ज़रूरत है।'

इसी भाषण में बिल गेट्स ने कहा था कि अब अगर लाखों लोगों के सामने मौत आयी तो वह किसी विश्वयुद्ध के कारण नहीं, बल्कि वायरस के कारण होगी. वायरस का खतरा विश्वयुद्ध के खतरे से कम नहीं है. यह बात अब हम तो क्या, पूरी दुनिया मानती है कि यह संक्रमण एक तरह का विश्वयुद्ध ही है. ❑

फिर भी बचा रहता है कुछ

● विजय कुमार

सभ्यता के आरम्भिक काल से मनुष्य का नितांत एकांत और उसकी सहज सामूहिकता दो अलग और द्वंद्वात्मक स्थितियां रहीं. एकांत ने हमेशा उसे एक बुनियादी स्पेस दिया. मनुष्य अपनी आंतरिक दुनिया, बोध और अनुभवों की जटिलताओं पर चिंतन-मनन की ओर लौटा. और अक्सर यह एक रचनात्मक अनुभव भी बना. लेकिन हमारा यह वर्तमान? इसने सब उलट-पलट दिया है. अब कहीं कोई एकांत नहीं बचा. संसार में लॉकडाउन की एक अभूतपूर्व स्थिति रच दी जाए पर इस लॉकडाउन में जन्म क्या ले रहा है? प्रतिपल और प्रतिक्षण चारों तरफ का निरर्थक शोर, सूचनाओं की बाढ़, मानसिक प्रतिक्रियाओं की एक सामूहिक अकर्मण्य संरचना. उसके छिछले जल पर जो चीज़ तैरती रहती है वह है भय, आशंकाएं, पैरानोइया, व्यर्थता बोध और ऊब. सब गुम, सब पैसिव. टीवी, मोबाइल, सोशल मीडिया सबकी एक भयानक घेराबंदी. कहीं किसी को अकेला नहीं छोड़ा जा रहा है. कमरे की दीवारों ने आपको एकाकी नहीं रहने दिया. दिन में धूप के आने-जाने, शाम की ढलती-घेरती उदासी और आम के पेड़ पर आयी नयी नयी बौरों और टहनियों-पत्तियों की सरसराहट में, चिड़ियों और कबूतरों की आवाज़ों में और रात के जगमगाते सितारों की महफ़िल में आपको शामिल नहीं होने

दिया जायेगा. पड़ोस के घरों में टीवी किसी पागल हाथी के मानिंद चिंघाड़ रहा है, मोबाइल घनघना रहे हैं, संदेश आ रहे हैं, जा रहे हैं, 'कहो सब ठीक तो है न', 'अपना ख्याल रखना.' फेसबुक पर एक चहचहाती आत्ममुग्ध दुनिया है. वह नयी नयी आयी कवयित्री सारे संसार को यह बताना नहीं भूल रही– 'आज शाम को ठीक छह बजे मेरा ऑनलाइन काव्य पाठ है, ज़रूर सुनियेगा'

चचा ग़ालिब तुमने 1857 का ग़दर देखा था. तुम्हारे चारों तरफ रक्तपात था, लाशें बिछ रही थीं, सबकुछ ध्वस्त हुआ जा रहा था, दम घोंटने वाला मंज़र था– तुम्हारे बाहर भी और तुम्हारे भीतर भी. तुम्हारी संतप्त अंतरात्मा से जो हूक उठी थी, वह आज अपने अर्थों को पहले से ज़्यादा फैला दे रही है. लेकिन सोचने की बात और ताज्जुब यह कि अपनी इस भयानक मायूसी को भी आप शब्द दे सके, उसे रच सके, उसे एक आकार दे सके.

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहां कोई न हो
हमसुख़न कोई न हो और हम्ज़बाँ कोई न हो

बेदर-ओ-दीवार स एक घर बनाया चाहिये
कोई हमसाया न हो और पासबां कोई न हो

पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार
और अगर मर जायें तो, नोहाख़्वां कोई न हो

नेटफ्लिक्स पर उपलब्ध दूसरे महायुद्ध पर 14 खंडों में बनी एक डाक्यूमेंट्री को देखता हूं. कैमरे में कैद उस समय के वे तमाम वास्तविक दृश्य. पोलैंड के वारसा शहर पर बम गिर रहे हैं. क्राकोव शहर नष्ट हुआ जा रहा है. ताश के पत्तों की तरह से इमारतें बिखर रही हैं, पुल टूट रहे हैं, बस्तियां उजड़ रही हैं. बम गिरते हैं धूल के विकराल और स्याह बगुले उठते हैं. और फिर कुछ नहीं.... देखने के लिए कुछ भी नहीं बचता. इतिहास में अंकित होती हैं केवल घटनाएं और तारीखें. धूल के उन बगुलों के नीचे मनुष्य का वह आर्तनाद, वह चीत्कार, वह रुदन और क्रंदन क्या था? हमें डॉक्यूमेंट्री कभी नहीं बता पायेगी.

लेकिन उसी वारसा और क्रोकोव शहर से उठते हैं बीसवीं सदी के कुछ सबसे असाधारण कवि जिनके लिए इतिहास छोड़ गया उन चीत्कारों, आर्तनाद, रुदन और क्रंदनों को रचते रहने का काम.

हमने पढ़ा कई दशक बाद उन आर्तनाद, चीत्कारों, रुदन और क्रंदनों की आंतरिकता को.

हमसे बाद वाली पीढ़ियां भी पढ़ती रहेंगी उन्हें.

नियति के लॉकडाउन से समय हमेशा बाहर निकलता रहेगा. बाहर निकलता रहेगा मनुष्य का कृतित्व.

घेरेबंदियां अंतिम सत्य नहीं हो सकतीं.

❑

कविता

हम अपना समय लिख नहीं पायेंगे

● अशोक वाजपेयी

यह ठहरा हुआ निर्जन समय
जिसमें पक्षी और चिड़ियां तक चुप हैं,
जिसमें रोज़मर्रा की आवाजें नहीं सिर्फ़ गूंजें भर हैं,
जिसमें प्रार्थना, पुकार और विलाप सब मौन में विला गये हैं,
जिसमें संग-साथ कहीं दुबका हुआ है,
जिसमें हर कुछ पर चुप्पी समय की तरह पसर गयी है,
ऐसे समय को हम कैसे लिख पायेंगे?
पता नहीं यह हमारा समय है
यहां हम किसी और समय में बलात् आ गये हैं
इतना सपाट है यह समय
कि इसमें कोई सलवटें, परतें, दरारें, नज़र नहीं आतीं
और इससे भागने की कोई पगडण्डी तक नहीं सूझती.
हम अपना समय लिख नहीं पायेंगे.
यह समय धीरे चल रहा है
लगता सब घड़ियों ने विलम्बित होना ठान लिया है;
बेमौसम हवा ठण्डी है;
यों वसंत है और फूल खिलखिला रहे हैं
मानों हमारे कुसमय पर हंस रहे हों
और गिलहरियां तेज़ी से भागते हुए
मुंह चिढ़ाती पेड़ों या खम्भों पर चढ़ रही है;
अचानक कबूतर कुछ कम हो गये हैं
जैसे
दिहाड़ी मज़दूरों की तरह अपने घर-गांव वापस
जाने की दुखद यात्रा पर निकल गये हों:
हमें इतना दिलासा भर है कि
अपने समय में भले न हों, हम अपने घर में हैं.
उम्मीद किसी कचरे के छूट गये हिस्से की तरह
किसी कोने में दुबकी पड़ी है
जो आज नहीं तो कल बुहारकर फेंक दी जायेगी.
हम अपना समय लिख नहीं पायेंगे.

कविता

आने वाले ख़तरे

● विजय कुमार

हम जो अपने घरों के भीतर बैठे हैं
साबुन से बार बार अपने हाथ धोते
हम सोच नहीं सकते
कि वे क्यों अपने घरों की ओर
लौटना चाहते थे
कोई क्यों अपने घर लौटता है ?
गर इसका कोई सीधा सरल जवाब
होता
तो नहीं लिखी जाती दुनिया भर में
कविताएं

बहुत आसान है उन्हें गैरजिम्मेदार
कह देना
एक दृश्य है उन्हें खदेड़ दिए जाने का
हिकारत, गालियां, लानत, घुड़कियाँ
इनके अर्थ उनके लिए बेमानी
सिर्फ एक बिलखना है वहां
बदहवास चेहरे
रुके हुए आंसू
अस्फुट शब्द
तमतमाई हुई मुखाकृतियां
या अगले ही पल कुछ याचनाएं
टूटे हुए वाक्य

घूंघट में आधा मुख ढके वे स्त्रियां
वे कंधों पर चढ़े मटमैले रूखे बच्चे
उनकी आंखों में है एक अनलिखा यह
वर्तमान

किसने कहा था पिछले किसी दौर में
कि
गिड़गिड़ाहट की भी एक हिंसा होती है

तालाबंदी है
वे अपनी भूख के लिए चाबियां

खोजते लोग
वे शायद कल फिर कहीं और दिखाई पड़ जाएं
हां,
अपनी भूख के लॉकडाउन की
चाबियां खोजते

अधबनी इमारतों के बांसों, खप्पचियों
भीमकाय क्रेनों ने
उन्हें दुत्कार दिया
बोरे, तसले, फावड़े अब रहस्य हैं
गारा और ईंटों ने कहा अभी इंतज़ार करो
हाथ गाड़ियां खड़ी गलियों में उदास
बोझे अब सिर पर नहीं कहीं और
गायब सब, सब गायब, सबअदृश्य
ठेकेदार, मुकादम, आश्वासन, तारीखें
सारी की सारी खिड़कियां

मुट्ठी भर भात के साथ चुटकी भर नमक
और खत्म हो जाती है सोशल डिस्टेंसिंग

उन पर बरसती हैं लाठियां
वे लांछित तो बहुत पहले ही थे
दुत्कारे तो बहुत पहले ही गये थे
काल के एक विह्वर से निकल कर आये
और दृश्य में अचानक प्रकट हो गये
ये लोग

वे सुर्खियां हैं, खबरों का एक नया मसाला
उन पर चीखती हुई दुर्गा का अवतार
वह एंकर
जो रोज नये नये डिजाइन के परिधानों में
हैवी मेकअप में टीवी पर उतरती है
उसका चीखना, उसका भावावेश
उसकी चिंताएं
उसकी लिपिस्टिक, रूज़ और काजल
जितने ही प्रोफेशनल

कहीं नहीं है कोई कच्चा चिट्ठा
वे केवल एक संख्या हैं अब
कोई रहस्य नहीं कोई कन्दराएँ नहीं
अनबूझे दबे ढके रहस्य नहीं
केवल ज़िंदा हैं, अभी तक ज़िंदा
होनी की एक तस्वीर उजागर है जो वहां
उसे हम देख नहीं पाएंगे
उसे कोई देख नहीं पायेगा

वे पूछते हैं सामने खड़ी मृत्यु से
तुम आओगी मेरी तरफ
या
हम ही पहले चले आएं तुम्हारी तरफ़?

कविता

युद्ध

● हूबनाथ

किसी भी युद्ध के
सिर्फ दो परिणाम
विजय या पराजय
तीसरा और सबसे शर्मनाक परिणाम
भाग जाओ मैदान छोड़कर
और हर पल मरो
अपनी ही नज़र में
अन्यथा सामना करो शत्रु का
शत्रु
अदृश्य हो
अमूर्त हो
अलक्ष्य हो
तो बेकार हैं अस्त्र शस्त्र
जो दिखता नहीं
वह मरता नहीं
भयभीत करता है
ऐसे में शक्ति के साधन
जो पुराने पड़ चुके हैं
विसर्जित कर
नूतन शक्ति का संधान करें
ऐसी शक्ति
जो अदृश्य है
अमूर्त है
अलक्ष्य है
पर असम्भव नहीं
कुदरत ने जनमते ही
सौंपी है सभी को
जो सबके पास तो है
पर दिख नहीं रही
महसूस नहीं हो रही
पर है सबके पास
मन की शक्ति
लाखों घोड़ों से भी शक्तिशाली
हजारों हाथियों का बल लिए

रोशनी की गति से
लाख गुना तीव्र
शरीर की एक एक
कोशिका के केंद्र में निहित
मामूली से मामूली इंसान
के भी भीतर
उतनी ही सक्रिय
जितनी मसीहा के भीतर
बस उसने पहचान लिया
हम अनजान रहे
करो आराधना मन की शक्ति की
साधो मन को
अरबों कोशिकाओं की ऊर्जा
केंद्रीभूत करो
उठो देह से ऊपर
जैसे उठे थे राम

संकट की घड़ी में
यकीन मानो
सृष्टि की समस्त विनाशक
शक्तियां मिलकर भी
बाल बांका नहीं कर सकतीं
पहचानो खुद को
अपनी संचित ऊर्जा को
और उतर जाओ
युद्ध के मैदान में
नितांत निहत्थे
विजय तुम्हारी होगी
कभी नहीं सुना
कि अंधेरे से दीपक बुझा
वह तो बुझता है
डर की हवा से
हवा कै डर से
निर्णय तुम्हारे हाथ
डर कर मरो
या लड़कर जीतो
युद्ध जीवन का

कविता

हम धोखे में थे

● अज्ञात

जरा सोचिए!
हम धोखे में थे कि हम पृथ्वी को बचा सकते हैं
हम पोलूशन कम कर सकते हैं
लेकिन अब हमें पता चला कि
अगर इंसान अपनी टांग न अड़ाए
तो पृथ्वी अपने घाव तेज़ी से भरती है
हम धोखे में थे कि हम जंक फूड के बिना
उसे जी नहीं सकते
सारे जंक फूड रेस्तरां बंद थे
और दुनिया तब भी चल रही थी
हम धोखे में थे कि हम घर से काम नहीं कर सकते
हम धोखे में थे कि हमारे मीडिया
बहुत समझदार है हम धोखे में थे कि
हमारे क्रिकेट स्टार
हमारे फिल्म स्टार
असली हीरो हैं
पता चला कि यह तो बस एंटरटेनर्स हैं

हम धोखे में थे कि यूरोप के लोग
बहुत समझदार और पढ़े-लिखे होते हैं
हम धोखे में थे कि कोई ज्योतिषी
कोई मौलवी
कोई पंडित
कोई प्रीस्ट
किसी बीमार इंसान की जान बचा सकता है
हम धोखे में थे कि तेल बहुत कीमती चीज है
अब हमें पता चला कि
हमारे बिना तेल की कोई कीमत नहीं है
हम चिड़ियाघर के जानवरों को देखकर खुश होते थे
जब हम पिंजरे में बंद हुए
तब पता चला कि उन जानवरों को
कैसा लगता होगा
हम धोखे में थे कि शॉपिंग मॉल्स बंद हो जाएंगे तो
दुनिया रुक जाएगी
शॉपिंग मॉल तो बंद थे
लेकिन दुनिया तब भी चल रही थी
ब्रांड्स नहीं थे दुनिया तब भी चल रही थी
हम छुट्टियां मनाने बाहर नहीं जा रहे थे

दुनिया तब अभी चल रही थी
हम देर रात चाय की होटल पर बैठकर
टाइम वेस्ट नहीं कर रहे थे
और दुनिया तब भी चल रही थी
जो फर्क पड़ा है वह नकली जिंदगी को
फर्क पड़ा है
आर्टिफिशियल लाइफ को फर्क पड़ा है
असली ज़िंदगी को कोई फर्क नहीं पड़ा
है
फिजूलखर्ची बंद हो गयी
आप अपने परिवार के साथ वक्त बिता
रहे हो

आंगन में बच्चे खेल रहे हैं
फूल अब भी खिल रहे हैं
नदी अब भी बह रही है
बल्कि पहले से ज़्यादा साफ होकर बह
रही है
गाय अब भी दूध दे रही है
मुर्गी अभी अंडे दे रही है
खेतों में सब्जियां अब भी उग रही हैं
और आपके घरों तक यह सब चीज़ें
पहुंच रही हैं
हमें पता चल गया कि
हम धोखे में थे

कविता

यह सभ्यता

● संजय कुंदन

महामारी से नष्ट नहीं होगी यह
सभ्यता
महायुद्धों से भी नहीं
यह नष्ट होगी अज्ञान के भार से

अज्ञान इतना ताकतवर हो गया था
कि अज्ञानी दिखना फैशन ही नहीं
जीने की जरूरी शर्त बन गया था

वैज्ञानिक अब बहुत कम वैज्ञानिक
दिखना चाहते थे
अर्थशास्त्री बहुत कम अर्थशास्त्री
दिखना चाहते थे
इतिहासकार बहुत कम इतिहासकार

कई पत्रकार डरे रहते थे
कि उन्हें बस पत्रकार ही
न समझ लिया जाए
वे सब मसखरे दिखना चाहते थे

हर आदमी आईने के सामने खड़ा
अपने भीतर एक मसखरा
खोज रहा था

इस कोशिश में एक आदमी
अपने दोस्तों के ही नाम भूल गया
एक को तो अपने गांव का ही नाम याद
नहीं रहा

बुद्धि और विवेक को खतरनाक
जीवाणुओं और विषाणुओं की तरह
देखा जाता था
जो भयानक बीमारियां पैदा कर सकते
थे
इसलिए गंभीर लोगों को देखते ही
नाक पर रूमाल रख लेने का चलन था

एक दिन अज्ञान सिर के ऊपर बहने
लगेगा
तब उबरने की कोई तकनीक, कोई
तरीका किसी
को याद नहीं आएगा
तब भी मसखरेपन से बाज नहीं आएंगे
कुछ लोग
एक विद्रूप हास्य गूंजेगा
फिर अंतहीन सन्नाटा छा जाएगा।

व्यंग्य

जिस देश में जीनियस बसते हैं

● मनोहर श्याम जोशी

अंग्रेज़ी शब्द जीनियस के जो भी हिंदी पर्याय अब तक सूझे या सुझाए गये हैं, वे हिंदी साहित्य के प्रणेताओं, पारखियों और प्रेमियों को नितांत अपर्याप्त प्रतीत हुए हैं. इसीलिए अंग्रेज़ी का यह शब्द ज्यों का त्यों हिंदी में चल पड़ा है. इस शब्द की आवश्यकता हिंदी साहित्य में है भी खासी. दूसरे साहित्यों में बहुत ढूंढ़ने पर मुश्किल से एक मिलता है तो वहां बगैर ढूंढ़े हर पीढ़ी में एक हजार जीनियस मिल ही जाते हैं. आप चाहें तो इसे यों कह लीजिए कि हर पीढ़ी में एक हज़ार साहित्यिक अपने को जीनियस मानते और मनवाते मिल ही जाते हैं. यहां शायद यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि जीनियस की एक परिभाषा यह भी है कि जीनियस हर परिभाषा से परे होता है– वह दूसरों के बनाये हुए मानकों का पात्र नहीं, अपने अलग अनूठे मानकों का निर्माता होता है. वह अलग मानकों का दावा करता है इसलिए इतर जन अपने मानकों के अनुसार उसके व्यक्तित्व और कृतित्व को प्रपंच घोषित कर सकते हैं और करते हैं. इसलिए जहां शब्द जीनियस की आवश्यकता होती है वहां इसके एक विपर्यय फ्राड की भी मांग बहुत बढ़ जाती है. हिंदी साहित्य में फ्राड भी जीनियस की तरह बहुप्रचलित हुआ है. तो आज हिंदी साहित्य में दो ही तरह के प्राणी बसते हैं– जीनियस और फ्राड. बल्कि यों कहना चाहिए कि निरे जीनियस ही जीनियस बसते हैं जिन्हें समय, सुविधा और सत्ताकांक्षा के आग्रह के अनुसार आप चाहे जब फ्राड करार दे सकते हैं.

पूजन और प्रताड़न का यह सह–अस्तित्व हमारे साहित्यिक मंच का महत्त्व भले ही घटा रहा हो उसका मनोरंजन–तत्त्व निश्चय ही बढ़ा रहा है. यह संयोग नहीं कि लतीफेबाजी इधर हिंदी साहित्य में सर्वाधिक चर्चित विधा का स्थान पा गयी है. श्रद्धा-भक्ति का यह हाल है कि अगर कोई सत्तारूढ़ व्यक्ति लिखे कि अमुक पीढ़ी के लेखक परम मूर्ख हैं तो अमुक पीढ़ी के लेखक फौरन कह रहे हैं कि आपने तो मेरे मुंह की बात छीन ली. किसी व्यक्ति को इसीलिए नाचीज कहा

जा रहा है कि वह प्राध्यापक है, साहित्य का डॉक्टर है, तो किसी व्यक्ति को इसलिए नगण्य माना जा रहा है कि वह प्राध्यापक नहीं है, साहित्य का डॉक्टर नहीं है. अमुक जी के अभिनंदन समारोह में जो लोग मंच पर जाकर अमुक जी को पुष्पों और प्रशस्तियों के हार पहना रहे हैं वे ही आपस में यह कह रहे हैं कि अमुक जी फ्राड के मामले में सर्वथा न भूतो न भविष्यति हैं और तो और, यह अभिनंदन भी उन्होंने फ्राड में कराया है. हर आदरणीय सम्पादक महोदय हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि करने के लिए सराहे जा रहे हैं और पद से हटते ही हिंदी साहित्य का बंटाधार करने के लिए ज़िम्मेदार ठहराए जा रहे हैं. आत्मप्रचार और गुटबंदी को बहुत बुरा बताया जा रहा है मगर मजबूरी कुछ ऐसी है कि थोड़ा-बहुत आत्मप्रचार और गुट-संगठन करना ही पड़ रहा है. किसी को इसी बात का नाज है कि वह अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा हिंदी लेखक है तो किसी को इस बात का कि उसे अंग्रेज़ी नहीं आती. कुल मिलाकर यह कि कस्बा शहर का मुखौटा लगाकर हिंदी साहित्य के मंच पर छद्म आधुनिकता और छद्म भारतीयता का अभिनय कर रहा है. साहित्यिक परिदृश्य समाजशास्त्रीय अध्ययन का विषय बनता जा रहा है.

हमारे तरुण लेखक इस स्थिति से क्षुब्ध हैं लेकिन इससे निपटने के लिए वे भी पूर्ववर्तियों के मार्ग पर चलने की भूल कर रहे हैं. एक ओर वे अगले जमाने के प्रगतिशील साहित्यकारों की तरह यह दुराग्रह कर रहे हैं कि एक विशिष्ट चिंतन अपना लेने से ही साहित्य महान या महत्त्वपूर्ण हो जाता है. दूसरी ओर वे प्रयोगवादियों की तरह यह माने ले रहे हैं कि एक लघु-पत्रिका निकालकर, एक मित्र मंडली का मिला-जुला संकलन छपवाकर (जिसमें लेखक परिचय रूमानी मगर चौंकाने वाले हों– यथा 'सूने देह का अभिज्ञान कराया, जिसने आत्मा का अलौकिक परिचय दिया)' और 'व्यावसायिक, पोंगापंथी हिंदी वालों की फटीचर परम्परा से अलग होने' और संस्कृत तथा अंग्रेज़ी की गौरवमयी परम्परा से जुड़े होने का दम भर लेने से ही कोई भी कैसा भी लेखक अपनी और दूसरों की निगाह में महत्त्वपूर्ण ठहरा दिया जा सकता है. कुल मिलाकर यह कि नयी पीढ़ी का नया होने का ढंग भी निहायत ही पुराना है. कभी-कभी ऐसा महसूस होता है कि तथाकथित आधुनिक हिंदी साहित्य तमाम 'क्रांतिकारी' पीढ़ियों के प्रयत्नों के बावजूद किशोरावस्था को पार नहीं कर पाया है. कैशोर्य उसका स्थायी भाव है– कभी-कभी अपनी इस अदा के कारण वह खासा प्रीतिकर मालूम हो सकता है. लेकिन ज़्यादातर वह एक ऐसे किशोर का ही स्मरण करता है जो बड़ा होने से इनकार कर रहा हो मगर बड़ा समझे जाने का

आग्रह कर रहा हो. इस दृष्टि से हमारा साहित्य परिदृश्य मनोवैज्ञानिक के लिए रोचक बन जाता है, भले ही पाटक के लिए उसमें ऊब ही ऊब हो.

जीनियसों की भीड़ होने से मानदंड़ों का लोप हो रहा है तो मानदंडों का लोप होने से जीनियसों की भीड़ कुछ और भी बढ़ रही है. आज खरी आलोचना को भी द्वेषपूर्ण ठहराया जा सकता है, इसलिए कि अक्सर आलोचनाएं द्वेषपूर्ण होती हैं. खरी प्रशंसा को भी गुटबंदी की देन माना जा सकता है इसलिए कि अक्सर प्रशंसाएं गुट के सदस्यों की ही की जाती हैं. हमेशा निस्संग दार्शनिक मुद्रा में बोलने-लिखने वाले महान हिंदी साहित्यकार की चाटुकारिता का चटखारे ले-लेकर सेवन करते हैं और आत्मप्रचार और आत्मप्रशंसा का अवसर चुकाना अधर्म समझते हैं. ऐसा मालूम होता है कि प्रतिष्ठित होने के बाद भी उन्हें अपनी प्रतिष्ठा के आधार पर कोई भरोसा नहीं है, हिंदी साहित्य के चंचल संसार का स्मरण करके वे सदा त्रस्त और आशांकित रहते हैं और काफी प्रतिष्ठित व्यक्ति ऐसा करते हैं. इसलिए मान लिया जा सकता है कि सभी लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्ति फ्राड हैं और यह भी कि अगर हम फ्राड करें तो मात्र इसी से हमारी गणना लब्ध-प्रतिष्ठों में होने लगेगी. साहित्य का नीति या राजनीति से सम्बद्ध होना तो आवश्यक है नहीं, शिल्पगत आग्रह का भी कोई अर्थ नहीं होता, इसलिए बिना किसी संशय या संकोच के कोई भी आंदोलन छेड़ दीजिए, उसे कुछ भी नाम दे दीजिए और उसकी ऐसी परिभाषा कीजिए कि किसी के पल्ले कुछ पड़े ही नहीं. छायावाद से लेकर अकविता तक यही हुआ है– अंग्रेज़ी और संस्कृत साहित्य के शास्त्रों के आधार पर लम्बी-चौड़ी बहसें हुई हैं और हिंदी साहित्य का संसार लगभग ज्यों का त्यों रह गया है. जिस देश में जीनियस बसते हैं उस देश में यही सब होता है. ❑

नींद से उठें तो...

हमारे समय के मूर्धन्य कवि केदारनाथ सिंह फ्रांस में सार्त्र की कब्र पर फूल चढ़ाने गये थे. वहां उन्होंने देखा कब्र के ऊपर मेट्रो के टिकट बिखरे पड़े थे– फूलों की जगह मेट्रो के टिकट! केदारनाथसिंह ने एक टिकट उठा कर देखा, उस पर लिखा था– 'नींद से उठें तो घर आ जाइएगा'! आज भी पेरिस में ऐसे लोग हैं जो मानने को तैयार नहीं कि सार्त्र मर चुके हैं!

धारावाहिक उपन्यास

(दसवीं किस्त)

योगी अरविंद

● राजेंद्र मोहन भटनागर
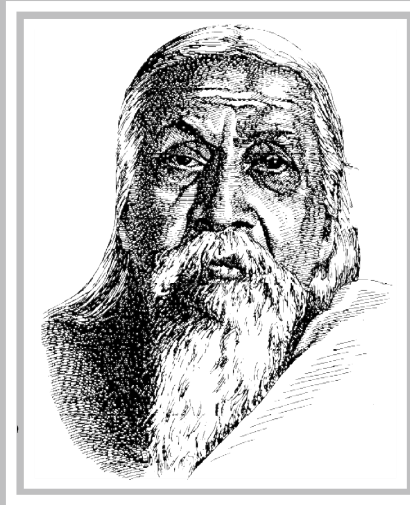
विचार करना बंद करो, केवल ध्यान करो. पहले विचारों को आने से रोको, फिर उनको जाने मत दो. फिर मन में ध्यान लगाओ. पाओगे कि विचार अंदर आने से रुके नहीं हैं. नहीं रुकेंगे. चिंता मत करो. उनको उलीचते जाओ. थको मत. कुछ समय बाद विचार थकने लगेंगे. ध्यान मन पर डटने लगेगा. यही क्रिया करते रहो. फिर स्वतः ध्यान मन पर टिकने लगेगा. जब कभी मन उचाट हो, उन्मना हो, शिथिल होता लगे, भारी-भारी होने लगे, तब विचारों को उलीचना प्रारम्भ करो. विष्णु भास्कर लेले के द्वारा ध्यान को मन पर लाने के लिए कराये गये अभ्यास को अरविंद सबके साथ चलते हुए पुनरावृत्त करते जा रहे थे.

अब वे सब गंगा के तट पर थे. रामबाबू (रामचंद्र मजूमदार) ने केवट को पुकारा. रामबाबू ने केवट से बातचीत की. रामबाबू ने फिर कहा, 'चलिएगा.'

पहले अरविंद नौका पर चढ़े, फिर मणि चक्रवर्ती और उसके बाद बारीन. रामबाबू नाव रवाना होने पर लौट पड़े.

उस दिन शुक्लपक्षीय एकादशी की रात थी. जाग्रत नेत्रों से चंद्र यात्रा कर रहा था. गंगा की लहरों ने मौन धारण कर लिया था.

नौका एक दीवार में हिचकोले खाती बढ़ी जा रही थी. अरविंद निर्विकार थे, आंखें बंद किये. केवट अधेड़ था परंतु अल्हड़ मस्त. पूछ रहा था– 'गाऊं क्या?' उत्तर न पाकर उसने पुनः पूछा, 'गाना तंग

माहौल को निर्बंध कर देता है और समय के बोझ को कंधे से उतार फेंकता है.'

अरविंद ने आंखें खोल दीं. केवट की ओर देखा. कुछ देर बाद पूछा, 'तुम कितना पढ़े हो.'

'जितना अपने आपको भूलने के लिए ज़रूरी होता है, श्रीमान्!'

'क्या मतलब?'

'मतलब सीधा-सा है. किसी का पेट दो रोटी-भाजी से भर जाता है और किसी का पांच रोटी-भाजी से और किसी का पेट चाहे जितना खा जाए परंतु भरेगा ही नहीं. चींटी भी पेट भरती है और हाथी भी. फिर यह गणित अलग-अलग हुआ न, बाबूजी. सारा किस्सा मन के मानने का है.'

'तुम मन के बारे में क्या जानते हो?'

'यह पूछो कि उस सुसरे के बारे में हम क्या नहीं जानते?'

अरविंद में जिज्ञासा ने पंख फैलाये. बहुत दिलचस्प इंसान है. अरविंद उससे कह रहे थे. उसकी कुछ जानकारी हमें भी कराओ, भाई.

'क्या आप लहरें गिन सकते हैं, बाबूजी?'

अरविंद, मणि और बारीन तीनों चौंके. अरविंद ने कहा, 'नहीं, भाई. यह अभ्यास हमने आज तक नहीं किया.'

'तो सचमुच आपने लहरें नहीं गिनी हैं.' उसने बिना सोचे-समझे कहा और पतवार को गंगा की सतह पर कुछ इस तरह लहराया कि वह भी एक लहर बन गयी. वह बोला, 'बाबू लो, लहरें आ गयीं, अब गिनने की कोशिश कीजिए... गिनने में भूल की चिंता नहीं. पर गिनो जब तक लहरें आती रहें.' इसके साथ वह भी तेज़ी से गिनने लगा.

नौका से टकराकर लहरें उठतीं, लहरातीं. लहरें दर लहरें और उन लहरों का मद्धिम-मद्धिम संगीत थिरक कर चहुं ओर गूंज रहा था. धीरे-धीरे मानसिक आवरण हटने लगा और सारा पर्यावरण पहले से हल्का, अधिक विशाल और विस्तृत होता प्रतीत होने लगा. उन्हें लगने लगा कि न अब वे इच्छा कर रहे हैं, न सोच रहे हैं, न उनमें संवेग उठ रहे हैं. फिर भी वे हैं, उनका अस्तित्व है. यह क्या हो रहा है? हम स्थिर होते जा रहे हैं, नौका भी स्थिर होती जा रही है और गंगा एकदम प्रशांत है.

केवट पूछ रहा था, 'गिन पाये, बाबूजी.'

बारीक ने तपाक से कहा, 'दो सौ तीस.'

मणि चक्रवर्ती, 'तीन सौ नब्बे.'

'मैं नहीं गिन पाया.' अरविंद ने कहा.

'तो आपने क्या अनुभव किया?'

'कुछ नहीं. मात्र लहरें देखीं. फिर लहरें ओझल हो गयीं और उसके बाद उनकी ध्वनि नज़र आने लगी.'

‘कि सुनाई पड़ी.’

‘नहीं नज़र आने लगी.’

‘क्या बिना किसी स्पंदन के.’

‘ध्यान नहीं गया.’

‘ध्वनिशून्यता के बाद, बाबूजी, क्या हुआ?’

‘गंगा भी ओझल हो गयी.’

‘फिर रेत रह गयी.’

‘नहीं.’

‘तो फिर?’

‘सिर्फ लहरें नज़र आ रही थीं.’

‘उनका रंग आकार...’

‘नहीं था.’

‘फिर भी आप विश्वास के साथ कह सकते हैं कि वे लहरें ही थीं?’

‘हां, वे, लहरें ही थीं.’

‘यह आप कैसे कह सकते हैं, जबकि आपको उनके रंग-रूप का कुछ पता नहीं है. आप सांसारिक नहीं हैं, बाबूजी.’

‘और हम.’ बारीन ने पूछा.

‘सांसारिक, बंधु.’

‘यह तुम कैसे कह सकते हो?’

‘मैं कह चुका हूं.’

‘पर क्यों?’

‘मैं नहीं जानता.’

‘तो फिर यह कैसे कह रहे हो?’

‘क्या मुझे वह सब कहने का हक नहीं है, जिसे मैं नहीं बता सकता लेकिन अनुभव कर रहा हूं.’ केवट ने नौका को दूसरी दिशा में मोड़ते हुए कहा.

‘तुम हो कौन, केवट?’

‘केवट, बाबूजी.’

‘मात्र केवट नहीं हो.’ अरविंद ने पुनः कहा. उसका मुख-मंडल, तेज युक्त है, उसकी आंखों में शांति का ज्वार है, उसके होंठों पर, कम्पन रहित स्मित है.

‘सच यह है कि मैं केवट नहीं हूं. अपने केवट मित्र का जिगरी हूं. मेरे पास रात स्वतंत्र है. गृहस्थी नहीं है. घर नहीं है. अकेला हूं.’

‘तो?’ मणि चक्रवर्ती ने पूछा.

‘आप जैसा भूला-भटका कोई मुसाफिर आ जाता है, बंधु, और मन मानता है और सौदा पट जाता है. मुसाफिर मेरे पसंद के हों, यह मेरे मन की पहली शर्त है जो मुझे अंदर से तैयार करती है यह कहकर, ‘शारदे, तू समय का खोल-बंद कर सकता है. अच्छा अवसर है, रात भी चांदनी भरी है और हवा में तुनकमिज़ाजी है. चल, उठ, गाते जा और सुबह होने से पहले सफ़र पूरा कर ले. क्यों, क्या सोच रहा है, बावरे!’ ‘बस, फिर सोचना कैसा, चल पड़ता हूं जैसे आपके साथ चल पड़ा हूं बिना भाव-ताव किये. भाव-ताव मुझे आता नहीं है. रुपए-पैसे मैं गिनता नहीं हूं. क्या आपको रुपए पैसे गिनना आता है, बाबूजी?’ उसने अरविंद से पूछा.

अरविंद अंदर से हिल गये. उन्हें लगा कि ये बावरा मस्तमौला योगी-ध्यानी-ज्ञानी सब कुछ है. वह लहरों की बिछावन पर

व्यक्ति को सुला सकता है और अतींद्रिय आनंद की उमंगों के साथ नर्तन करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है. वे कहने लगे, 'गाओ, भी.'

'गाऊंगा. अवश्य गाऊंगा. जैसा आता-जाता है वैसा. गंगा मां आशीर्वाद देगी कि ऐसा कौन भक्त है कि जो इतनी रात को गहरे सन्नाटे में आत्मलीन हुआ, प्रसन्नचित्त होकर मुझे लोरी सुना रहा है? सुनाते हुए झूम रहा है, पगला.' वह उतना कहकर पतवार का वाद्य की तरह प्रयोग कर उठा. नौका का मन थिरक उठा. लोल लहरें रुनन-झुनन कर उठीं. पवन ने हल्के-से उन पर थाप दी. यह संगीत चलता रहा, गति को लय में, लय को गति में अदलता-बदलता रहा.

वह आत्म-विभोर हो उठा. चांदनी निढाल होने लगी. मस्ती में झूमता हुआ वह कहने लगा, 'अद्वैत आचार्य ने जगदानंद को चैतन्य देव के लिए एक संदेश दिया था. वह संदेश क्या, एक अनसुलझी पहेली था. जगदानंद उससे कुछ नहीं समझ सके. आपके लिए भी वह प्रस्तुत है–'

'प्रभु के कहिओ आमार कोटि नमस्कार. एइ निवेदन तौर चरणे आमार. ...यही ना.' मणि चक्रवर्ती ने कहा.

गाऊंगा. अवश्य गाऊंगा. जैसा आता-जाता है वैसा. गंगा मां आशीर्वाद देगी कि ऐसा कौन भक्त है कि जो इतनी रात को गहरे सन्नाटे में आत्मलीन हुआ, प्रसन्नचित्त होकर मुझे लोरी सुना रहा है? सुनाते हुए झूम रहा है.

'तुम गाओ, बंधु. यही गाओ.' अरविंद ने कहा और गंगा की ओर देखने लगे. वे जान गये थे कि वह कुछ गायेगा. वह औलिया है, गा उठा.

बाउल के कहिओ लोको हइलो आउल।
बाउल के कहिओ हाटे ना बिकाय चाउल।।
बाउल के कहिओ काजे नाहिक आउल।
बाउल के कहिओ इहा करियाछे बाउल।।

अरविंद इस गीत में इतने खो गये थे कि कुछ समय तक मन-ही-मन वे इसी गीत को गुनगुनाते रहे. कुछ देर बाद पूछने लगे, 'समझे मणि, इसमें क्या पहेली निहित है.'

मणि चक्रवर्ती सोचकर बोला, 'दादा, यह मस्त गीत है. ...पहेली हम नहीं जानते.'

'बंधु, तुम कुछ बताओ.'

उसने खखारकर गला साफ किया और फिर कहने लगा, 'मैं अर्थों के चक्करों में कभी नहीं पड़ता. इसके पीछे भाव यह है, चैतन्यदेव प्रेम भक्ति रूपी चावल के बड़े व्यापारी हैं और अद्वैत आचार्य उनके माध्यम से चावल का विक्रय करते हैं.'

'तो?' मणि चक्रवर्ती ने पूछा.

'मैं तो इतना ही जानता हूं, बंधु.'

'बाज़ार में बेचने के

लिए, जो भक्ति रूपी चावल लाया गया था उससे खरीदकर मानुषों का अभाव दूर हो चुका है. फलत: अब इस चावल के खरीदने वाले नहीं हैं.' अरविंद ने कहा.

'मतलब?' मणि चक्रवर्ती ने पूछा.

'बंधु, अब हमारा इस संसार में आने का उद्देश्य पूरा हो चुका है.'

'बाबूजी, आप धन्य हैं. कहते हैं कि इसी के बाद चैतन्यदेव में कृष्ण के प्रति विरह दूना हो गया.'

तड़का आंख खोल रहा था. बारीन को झपकी लग गयी थी. मणि चक्रवर्ती ऊंघ रहा था. अब पवन गदराया हुआ था और मस्ती में आकर झूमने लगा था. गंगा की लहरें खिलखिला रही थीं. अरविंद के मन में केवट और उसका गीत लहर बन मचल रहा था. उन्हें विष्णु भास्कर लेले का स्मरण हो आया. लेले ने कहा था, 'प्रो. अरविंद, यह देश योग का घर है. घर-घर सुबह से योग शुरू हो जाता है. स्त्रियां हाथ चक्की से दिन का प्रारम्भ करती हैं, पनघट जाती हैं और सीता माता की रसोई सात्त्विक मन और शुद्ध भाव से तैयार करती हैं. वास्तव में वह रसोई रसायन लैब है. उनकी चक्की हाथ से चलती है और उसकी गति को लयात्मक गति मिलती है उसके मधुर बोलों से. कोई आश्चर्य नहीं है कि किसी सामान्य से दिखने वाले व्यक्ति में योग चरम पर पहुंच चुका हो. योग मन-आत्मा और परमात्मा के समन्वय से एकमएक हो जाता है, उसके नियम से अधिक मन-आत्मा के समन्वय की वह निराकार संगति है, जहां साकार स्वयं आकर, सहज प्रसन्नता से अपने को छोड़ता निराकारमय हो जाता है.' क्या केवट लेले का समर्थ उद्धरण नहीं है?

अरविंद पूछ रहे थे, 'मुझे तुम्हारे पढ़े-लिखे होने में कोई संदेह नहीं है. फिर भी बता सकते हो क्या?'

'क्या करोगे जानकर बाबूजी?'

'अपने अनुमान को तोष दिला सकूंगा?'

'स्नातक हूं. संगीत, नाटक में बेहद रुचि है. संसार को पुचकारता रहता हूं, ठीक कोचवान की तरह ताकि दुलत्ती की मार से निश्चिंत रहूं. पशु और इस पंचभूत के पिंजरे में प्राण-सत्ता की मेहमाननवाज़ी में कोई कसर न रह जाए.'

'तो?'

'गाता घूमता हूं उसके लिए जिसको पहचानता नहीं परंतु जिसको पहचानने की इकलौती इच्छा है.' केवट नौका को किनारे की ओर घुमाता हुआ कहता रहा.

'और इस सोनार माटी की, देश की आज़ादी की... यह सब.'

'इसमें ही समाहित है.'

'कैसे?'

'अभी नहीं कह सकता, बाबूजी. यह समय बातें करने का नहीं है, उसे सुनने

का है. वो गा उठा है. झरने-सा, पक्षी-सा, लहर पवन को छोड़कर, उसने अपने को कण-कण के प्रतिकण पर बिखेर दिया है. देख सको तो देखो–वह एकाग्र होकर सारे जगत् को अपने सम्मोहन में बांधे हुए है. कुछ समय बाद वह जगत को मुक्त कर देगा. उसे संसारी हो जाने देगा ताकि वह भी उसके स्पर्श पाकर उस जैसा स्रष्टा होने का आनंद ले सके. बाबूजी, जन्म का आनंद मात्र मां जानती है और मरण का विश्वास भी उसके आंचल में पलता है– दोनों साथ-साथ चलते हैं.'

'क्यों?'

'क्योंकि दोनों एकमएक हैं. ऐसे बाबूजी ऐसे.' कहकर वह ऊंचे स्वर में आलाप भरकर गा उठता है–

अमृत बरिसै हीरा निपजै, घटा पड़े टकसाल
कबीर जुलाहा भया पारखी, अनुयौ उतर्‌या पार

'क्या खोलकर बता सकोगे, केवट.'

'एक बार ये जीव अनहद नाद का अनुभव पा ले, फिर न संकल्प पकड़ेगा, न विकल्प, दोनों एक लय. तब परम तत्व के दर्शन की अनुभूति होगी और आनंद की अमृत बरखा में वह भीज रहा होगा. जैसे हीरा या वज्र शुद्ध देदीप्यमान् और अभेद्य होता है, वैसे ही ये जीव है विशुद्ध, प्रकाशवान् और अभेद्य, बाबूजी. ...हर हर गंगे, जय गंगा मैया की.' वह सहज में कह गया.

वह नौका को किनारे लगाकर बांध रहा था. तीनों उतर रहे थे. मणि चक्रवर्ती ने रुपए बढ़ाए.

'लो भाई, यह तुम्हारा मेहनताना है.'

'वो हमें पहले ही मिल गया, बाबूजी.'

अरविंद ने आगे बढ़कर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और अपने माथे से लगाया. वे चल पड़े. उनकी आंखें सजल हो उठीं.

अरविंद ने घूमकर घाट की ओर देखा. वे देखते ही रहे– न वहां वह केवट और न वहां वह नौका. ब्रह्मांड-सा आश्चर्य धूप-सा उनमें फैल गया. फैलता ही गया. कोने-कोने में मलयजी उजास होता गया.

'चलो दद्दा.' बारीन ने आगे बढ़ते हुए कहा.

पौ फट चली थी. प्रकृति के आंचल पर मौक्तिक नयन खोले अपलक देख रहे थे कि मां अभी तक, देर रात तक काम करती रहने के कारण, सोई पड़ी है– बेसुध. शिशु मां के आंचल से खेल रहा है. अरविंद का हृदय भर आया. उनके होंठ कम्पित हुए. उनका मन अतल स्पर्शी गहराइयों में उतरता चला गया.

●●●

दिनार्द्ध की चौखट तक जा पहुंचा था सवेरा. अरविंद एक स्थान पर बैठे हुए थे. बारीन और मणि चक्रवर्ती अभी तक लौटकर नहीं आये थे. उन्हें अब तक आ जाना चाहिए था. वे अभी तक केवट के

आत्मिक सम्मोहन से बंधे हुए थे. उन पर जादुई असर हो रहा था. रात को चले थे, दिन हो गया परंतु पता ही नहीं चला–न थकान, न झपकी. एकदम चैतन्य. वे पेड़ के नीचे आलथी-पालथी मारकर ऐसे बैठ गये जैसे कोई समाधिस्थ पुरुष!

यह क्या होने लगा है उनमें. कब तक भागते रहोगे, अरविंद अपने आप से! अब वे अपने आपको और धोखा नहीं दे सकते? वह केवट कौन था! क्या वही थे? क्या उनकी ही सत्ता है चतुर्दिक्! कारागार में भी वही आते रहे थे जब-तब. वे उनसे क्या चाहते हैं? केवट बनकर क्या वे ही संकेत दे गये हैं.

ध्यान तो वे करते थे परंतु उतना ही जितना उनसे सहज सम्भव था– न वे समय के पाबंद थे और न जीवनचर्या के चौखटे में कसे हुए थे. कभी ध्यान लगता था, कभी नहीं भी. प्राय: कारागार में लम्बे-लम्बे उपवास रखने पर उनमें ध्यान के लिए अलग से समय ही नहीं रहता था. दस-बारह दिन तक उपवास तो उनके लिए अत्यंत सहज था. वे अनुभव कर सके थे कि लम्बे उपवास से भी शरीर सुदृढ़ होता है. अलबत्ता लटक आया मांस अवश्य कुछ कम होता गया. कि आस-पास ढोल पीटो या नगाड़े बजाओ, हाथी चिंघाड़ें या शेर दहाड़ें, भूकम्प आये अथवा तूफान, पर उस पर कोई प्रभाव नहीं.

मणि चक्रवर्ती उनके सामने से हटा. बारीन ने भी वैसा ही किया. दोनों में संकेत हुए कि क्या किया जाए. बारीन ने अफसोस जताते हुए कहा, 'चारुचंद्र राय पर मुझे पूरा भरोसा था. क्यों न होता, वह पुराना क्रांतिकारी था और चंद्रनगर का सम्भ्रांत नागरिक. वह चाहता तो क्या नहीं कर सकता था?'

'सुझाव दे मारा जैसे भूखे की झोली में मोतियों के दाने डालकर कहा जाए, खाओ– उनको फ्रांस भिजवा दो.'

'फ्रांस भारत नहीं है, मि. राय.'

'यहां उनके लिए खतरा है.'

'फिलहाल तो कोई व्यवस्था हो.'

'क्या हो? कैसे हो?'

'क्यों?'

'थोड़ी ही देर में पुलिस के कुत्ते तलाश करते हुए यहां आ पहुचेंगे. ...फिर!'

'फिर क्या? जो होना होगा, वह होगा ही.' समय बुरा चल रहा है. क्रांति के जोश पर पाला मार चुका है. अकारण, आ बैल मुझे मार... पर क्यों?'

'तो इस वक्त.'

'मैं विवश हूं, बारीन बंधु. जैसे-तैसे मैंने चंद्रनगर में पैठ बनायी है. सरकार भी राज़ी है. काम-धंधा भी चल निकला है. दो पैसे अंटी में हुए हैं. एक क्रांतिकारी से सेठ की इमेज कायम की है. पैसा चाहिए तो बोलो, बारीन बंधु, उसके लिए ना नहीं है. ...दूं क्या?'

'नहीं राय सेठ, उसकी ज़रूरत

नहीं है.'

'कैसा टका-सा जवाब दे डाला उस पुराने क्रांतिकारी की दुम ने, जिस पर आज भी क्रांतिकारियों को नाज़ है.'

'बारीन, अब अफसोस जताने का समय नहीं है. कुछ करना है?' मणि चक्रवर्ती ने मोरचा संभाला.

'वे तो करना ही है, चक्रवर्ती.'

'मुझे याद पड़ता है कि यहां से एक फर्लांग की दूरी पर, मोड़ पर, जो पुस्तक विक्रेता है, वह 'वंदे मातरम्' और 'कर्मयोगिन' मंगवाता था और अच्छी बिक्री कर लेता था.'

'तो उधर चलें. ...शायद वह क्रांतिकारी गतिविधियों का भी सूचना केंद्र था. क्या नाम है उसका?' बारीन उसका नाम सोचने लगा.

'वह तो युवक है. एकदम जोशीला. उसका नाम... तुम्हें याद आना चाहिए, बारीन. वह तो मुझे लगता है तुम्हारे पास तीन-चार बार आ भी चुका है.'

बारीन ने खोपड़ी खुजाई. सिर झटका. एकदम बिजली कौंधी. वह उछल पड़ा. 'मोतीलाल राय...'

'हां. बारीन, वही मोतीलाल राय.'

वे उसी की तरफ बढ़ चले थे कि

ध्यान करते थे परंतु उतना ही जितना उनसे सहज सम्भव था– न समय के पाबंद थे, न जीवनचर्या के. कभी ध्यान लगता था, कभी नहीं. प्राय: कारागार में लम्बे-लम्बे उपवास रखने पर उनमें ध्यान के लिए समय ही नहीं रहता था.

सामने से मोतीलाल राय आता हुआ दिखलाई पड़ गया. पास आते ही उसने प्रणाम किया और पूछा, 'खैर तो है, बारीन बंधु.'

'क्यों, क्या कोई खास बात है.' मणि चक्रवर्ती पूछता है.

'दद्दा के नाम का वारंट इश्यू हो चुका है.'

'तुम्हें कैसे मालूम?'

'स्टेट्समैन में उनकी फोटो है और उसके नीचे ये खबर.' मोतीलाल राय ने धीरे-से कहा.

'यह सच है.'

'यहां क्या खोजने आये हो, बारीन भाई.'

'उनके लिए पनाह की खोज.'

'दद्दा हैं कहां?'

'यहीं, कुछ दूरी पर.'

'तो उन्हें ले आते हैं?'

'कहां?'

'अपने यहां...चिंता नहीं. चंद्रनगर में दद्दा तक सरकार के पिल्ले नहीं पहुंच पाएंगे. ...तुमने यह रहस्य किसी पर प्रकट तो नहीं किया है ना?'

'किया है.'

'किस पर?'

'पुराने क्रांतिकारी चारुचंद्र राय पर.'

'उसने हाथ झाड़ दिये होंगे?'

'हां, राय. ...उसके बुढ़ापे को बेचारगी ने धर दबोचा है. वो आदमी बुरा नहीं है. उस पर विश्वास किया जा सकता है. वह यह खबर पचा जाएगा, मुंह नहीं खोलेगा. ...चलो-दद्दा के पास चलें.' मोतीलाल राय ने कहा.

'तुम उनके लिए प्रबंध करो, हम उन्हें लेकर आते हैं.'

'ठीक है. मैं दुकान खोलता हूं.'

पर यहां तो दृश्य दूसरा ही है. अरविंद ध्यानमग्न हैं. उन्हें उनके आने की आहट का कोई पता नहीं. बारीन ने कहा, 'अब, चक्रवर्ती!'

'उन्हें चेताएं तो कैसे?'

'हां, कैसे?'

'ज़ोर से पुकारकर और कैसे?'

'ताकि यह मालूम पड़ जाए कि जिनकी तलाश है, वे यहां हैं.'

'तब?'

'मैं प्रयास करता हूं.'

'कैसे?'

'तुम देखो तो.' कहकर मणि चक्रवर्ती अरविंद के पास आये और धीरे-धीरे कहने लगे, 'दद्दा, उठो. चलना है. सारा इंतज़ाम, हो गया है. ...देर मत करो, वहां इंतज़ार हो रहा है.' इसका उन पर कोई असर नहीं हुआ. वह कई बार इन पर यह प्रयोग करता रहा.

बारीन को शैतानी सूझी. वह टहनी तोड़ लाया. उनके कान में उस नन्हीं-सी टहनी को छुवाया. ऐसा उसने कई बार किया और अरविंद ने आंख खोल दीं. वे मुस्कराए. वे बोले, 'पता नहीं मुझे क्या हुआ कि मैंने काफी देर तक तुम लोगों की प्रतीक्षा की और जल्दी आते न देख आंखें बंद कर लीं.'

'और ध्यानाबाधित हो गये.'

'हां, कुछ ऐसा ही हुआ. ...अब चलें.' अरविंद इसी के साथ उठ खड़े हुए. अब वे तीनों चल रहे थे. बारीन सोच रहा था कि अरविंद की खोज खबर सरकार शुरू कर चुकी है. वे जिस विश्वास से यहां आये थे, उसमें भिड़ते ही असफलता मिली– चारुचंद्र राय नट गया. लेले भी समझा चुका था कि मुट्ठी-भर क्रांतिकारी इतनी बड़ी सत्ता का कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे. उनको पराजय हाथ लगेगी. बारीन लेले को मानिक तला बगीचे में लाये थे और दिखाया था कि वहां बम बनाये जा रहे हैं, बंदूक चलाने का अभ्यास कराया जा रहा है और 'गीता' से उनका मनोबल सुदृढ़ किया जा रहा है. लेले ने यह सब खड्ड में गिरने का रास्ता बताया था. इस सम्बंध में वह अरविंद से बात नहीं कर सका था. कदाचित् लेले ने भी इस सम्बंध में अरविंद से बात नहीं की थी. वह जाते समय इतना अवश्य कहता गया था कि यह समय अनुकूल नहीं है. क्रांति से आज़ादी नहीं मिलेगी. उसके चलते दमन चक्र तेज़ होगा और जनता अत्यधिक क्षुब्ध और

परेशान होगी. फिर उसे क्या करना चाहिए.

चारुचंद्र राय जैसे पुराने लोकप्रिय क्रांतिकारी जब रास्ता बदल चुके थे, तब क्या उनसे अन्य क्रांतिकारी प्रभावित नहीं हुए होंगे. तभी चंद्रनगर में क्रांतिकारी गतिविधियों को सांप सूंघता प्रतीत हो रहा है. अरविंद भी स्वामी विवेकानंद की शिष्या निवेदिता से आग्रह कर चुके थे कि वह 'कर्मयोगिन' का भार संभाल लें. क्या वे भी कुछ और सोचने लगी हैं. इसी बीच सशस्त्र पुलिस की एक टुकड़ी उधर से निकल गयी. बारीन का माथा ठनका. मणि चक्रवर्ती भी चमका पर अरविंद शांतिपूर्वक आगे बढ़ते गये.

●●●

चंद्रनगर अरविंद का पड़ाव स्थल रहा. मणि चक्रवर्ती और बारीन सारी व्यवस्था कर-कराकर कलकत्ते लौट गये थे. वहां भरपूर एकांत था. मोतीलाल राय उनके स्थान बदलता रहा– कभी उस घर में और कभी किसी दूसरे घर में. कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि दिन में ये कहीं और रहे, रात में कहीं और. उनको इससे कोई अंतर नहीं पड़ रहा था. अरविंद वहां ध्यान लगाते, उपवास रखते और लेले तथा केवट की बातों का स्मरण करते. सोचते कि राजनीतिक स्थितियां तो अवश्य बदलेंगी, फिलहाल उस क्षेत्र में उन्हें अपनी शक्ति झोंकने की कतई आवश्यकता नहीं है. उनके सामने अब न केवल भारत मात्र है बल्कि समूचा विश्व है.

क्रांति ध्यान तोड़ती है और शांति-ध्यान मन की समूची शक्तियों को एकत्र कर एक ऐसे लोक में ले जाते हैं, जहां अपने चित्र से संवाद करने की राह खुलती है. कभी-कभी सुबह से शाम हो जाती, वे ध्यानावस्थित बने रहते.

एक रात उनकी नींद उचाट हो गयी. उनके सामने मृणालिनी देवी दूध का गिलास लेकर आ गयी. वे चौंक पड़े. वे पूछ बैठे, 'तुम अभी तक, मेरे लिए दूध से भरा गिलास थामे खड़ी हो, मृणालिनी.'

'और क्या करती?'

'तुमसे कहा तो था कि काली मां का ध्यान लगाओ. अवश्य आयेंगी.'

'मेरे देवता तो आप हो, स्वामी, फिर मैं किसका ध्यान लगाऊं?'

'मैं लगाता हूं न.'

'लगाओ, मैं रास्ते में कहां आती हूं, स्वामी!... आपको कुछ चाहिए–सिद्धि, शांति, ईश्वर या और लोकोत्तर रहस्य की उपलब्धियां. पर मुझे तो इनमें से कुछ नहीं चाहिए. मेरे तो सर्वस्व आप हैं.'

'जैसी तुम्हारी इच्छा, मृणालिनी.' अरविंद इसी के साथ करवट बदलते. अंगड़ाई लेते. सोच को बाहर निकालकर खिड़की-दरवाज़े बंद कर लेते. आंखें ज़ोर से मींचते, वे जितनी ज़ोर से आंखें मींचते. उतने ही ज़ोर से मृणालिनी की पायल बजती सुनाई पड़ती. यह क्या हो रहा है.

हारकर वे कुर्सी पर आ बैठते. वे यह समझने लगे थे कि मृणालिनी उन्हें बहुत याद कर रही है. वह उनके लिए चिंतित भी बहुत है. बारीन को बारम्बार कुरेदती होगी. पूछती होगी, 'तुम्हारे दद्दा कैसे हैं? क्या सरकारी वारंट अभी तक यथास्थिति बना हुआ है! क्या तुम मुझे उनके पास ले जा सकते हो? वहां मैं अपने देवता की मन लगाकर सेवा करूंगी, उन्हें कोई कष्ट नहीं होने दूंगी.'

'भाभी, तुम कुछ समझने की कोशिश करो. यदि मैं तुम्हें लेकर इस घर से निकला तो गुप्तचर हमारे पीछे हो लेंगे और हम जहां जाएंगे, वहीं वे जा पहुंचेंगे और दद्दा को धर दबोचेंगे. क्या तुम यह चाहोगी?' बारीन धीरे-धीरे समझाता जाता.

'ना-ना...देवरजी, ना. क्या हम उनका बुरा चाहेंगे? कदापि नहीं, कभी भी नहीं.' और वह मन मसोसकर अपने कक्ष में लौट आती. पेड़ पौधों, पुष्प-कलियों, पक्षी शावकों आदि को अपने परिवार के सदस्य समझकर उनको निहारती रहती और मन आता तो उनसे संवाद शुरू कर देती. वे उसकी यह कहानियां कितनों से सुन चुके हैं पर करें तो क्या? यह सोचकर उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि मृणालिनी को ही पत्र लिखें ताकि उसके चित्त को कुछ शांति मिल सके. ये लिखने लगते– प्रिय मृणालिनी, मैं यहां सकुशल हूं. तुम्हारी याद आती है परंतु सामने विकट परिस्थितियां हैं जो मुझे एक स्थान पर नहीं रहने देतीं.

मनुष्य कर्तव्य के साथ जीता है और लक्ष्य तक पहुंचने का निरंतर प्रयत्न करता है. अभी मैं ठीक से कोई निर्णय नहीं ले पाया हूं. इतना अवश्य जान पाया हूं कि मेरा लक्ष्य सांसारिक समृद्धियां एकत्र करना नहीं है. आज के इस भौतिकवादी युग में हिंदू नारी ने उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किये हैं. मैं तुम्हारा उसी रूप में साथ चाहता हूं.

जैसे समय बदलता है, वैसे ही मनुष्य भी. यह बात लाखों में किसी एक पर लागू होती है कि वह एकदम अपने वर्तमान को उलट देता है. तब तुम्हारा क्या कर्तव्य बनता है, यह तुम्हें सोचना है. मेरे पत्रों को उठाकर शांतचित्त मन से, बिना तनाव लिए, एकांत क्षणों में उलटती-पुलटती रहा करो. पता नहीं कब प्रभु की उदार कृपा तुम पर भी हो जाए.

यह सच है कि मैं दिन-रात ध्यान में रहता हूं. मात्र तुम्हारी चिंता के अलावा मेरे मन में कोई चिंता नहीं है. ईश्वर, हम दोनों को एक रास्ते पर लाये, यही प्रार्थना है. अपना खयाल रखना, मन को भक्ति से जोड़ना. तुम बहुत अच्छा गाती हो. तुम्हारी वाणी में, चलती धारा को रोकने की शक्ति है. तुममें पूज्य भाव हैं. उनके होते हुए तुम्हें कोई अभाव नहीं सता सकता, ऐसा मेरा मन कहता है. यहां मैं पत्र को

विराम देता हूं. तुम्हारा ही.

पुनः पत्र पढ़ा. संतोष पाया. सुबह जब मोतीलाल राय आया तब उन्होंने कहा, 'राय, यह पत्र है. ऊपर नाम किसी का नहीं है. यह पत्र मैंने अपनी पत्नी के नाम लिखा है.'

'पहुंचाना है, पहुंच जाएगा. और कुछ...'

'पुलिस की गतिविधियां भी बढ़ीं.'

'संशय की सुई इधर भी ठहर सकती है.'

'कैसे संकेत?'

'तीन दिन से ध्यान में तीन देवियां दर्शन दे रही हैं, राय.'

'कुछ कहती हैं.'

'नहीं.'

'क्या आप उन्हें पहचान सके हैं?'

'नहीं. पहले मैंने उन्हें कभी नहीं देखा है.'

'हमें सावधान रहना चाहिए.'

'क्या वीरेन के यहां आने की कोई सम्भावना है?'

'उसके पीछे गुप्तचर लगे हैं.'

'समझ सकता हूं, राय, पर.'

'पर क्या?'

'मुझे कोई विश्वसनीय व्यक्ति चाहिए. यहां रहते हुए डेढ़ महीना बीत रहा है न. ज्यादे दिन एक जगह रहना, ठीक नहीं है.'

'कहीं जाने का इरादा रखते हैं, आप?'

'हां, राय. मुझे चंद्रनगर छोड़ने का आदेश मिल चुका है.'

'कहां, जाएंगे?'

अरविंद कुछ देर सोचते रहे.

'कलकत्ते जाना ठीक नहीं रहेगा.' मोतीलाल राय ने अनुमान लगाते हुए धीरे-से कहा.

'इस पर कल दोपहर को, भोजन के बाद चर्चा करेंगे, तब तक तुम किसी विश्वसनीय व्यक्ति की तलाश करो.'

'मैं तत्पर हूं.'

'फिर मेरी व्यवस्था कौन संभालेगा?'

'कल मिलते हैं.' अरविंद ने कहा.

'आज शाम को?'

'मैं ध्यान में रहूंगा. निर्जला उपवास रखे हूं.'

'आप अपने पर ज़रूरत से ज़्यादा सख्ती कर रहे हैं.'

'मुझे जब ऐसा लगेगा, तब मैं न उपवास करूंगा और न ध्यान पर बैठूंगा. मुझे ज़्यादती बिल्कुल पसंद नहीं, वह चाहे अपने पर हो अथवा दूसरे पर...' इतना कहकर अरविंद उठ खड़े हुए और मोतीलाल राय

> अभी मैं ठीक से कोई निर्णय नहीं ले पाया हूं. इतना अवश्य जान पाया हूं कि मेरा लक्ष्य सांसारिक समृद्धियां एकत्र करना नहीं है. आज के इस भौतिकवादी युग में हिंदू नारी ने उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किये हैं.

हाथ में सादा लिफाफा लेकर बाहर की ओर चला गया.

अरविंद को पिछले सप्ताह से ध्यान में यह आदेश मिलता रहा– पांडिचेरी जाओ. वे यह नहीं जान सके कि आदेश देने वाला कौन है, क्योंकि उन्हें किसी का चेहरा-मोहरा दिखलाई नहीं पड़ रहा था, सिर्फ आवाज़ सुनाई पड़ रही थी. उन्होंने कभी पांडिचेरी के बारे में सोचा भी नहीं था. एक बार और शायद आखिरी बार उन्हें यह आदेश मिला था कि अभी तक यहीं बैठा हुआ है. तेरा वहां इंतज़ार हो रहा है. वहां उनका कौन इंतज़ार कर रहा है! वे वहां किसी को जानते भी नहीं हैं. उन्हें क्या करना चाहिए, ये कौन बताए?

पहले वे वहां, किसी को भेजें. पता करें. वहां उनके रहने की व्यवस्था हो जाए. वह इलाका फ्रांस के अंतर्गत आता है. यानी ब्रितानिया सरकार से वह इलाका अलग है. क्या पता वहां की स्थितियां क्या हों? उनको वहां किस रूप में लिया जाए? इसी के साथ अरविंद ने गहरी सांस ली और ध्यान में बैठ गये. अरविंद के ध्यान में संवाद उठे. वे तटस्थ होकर उनके श्रोता बने रहे, जबकि संवाद उन्हीं दो के मध्य उठे थे और तीसरे व्यक्ति भी वही थे. जोकि एक समय में तीन अरविंद थे. तीसरा अरविंद मात्र द्रष्टा था.

'तुम्हारा जीवन सदाबहार उस नदी के समान है जो वर्ष में अधिकांश समय जमी रहती है. अरविंद प्रथम.'

'मैं नहीं जानता और न यह सब जानने की इच्छा रखता हूं.' अरविंद द्वितीय.

'पहले तुम्हारे पिताजी ने घर से अलग किया और अब तुम स्वयं घर से अलग हुए हो.'

'पहले तुमने आज़ादी पाने के लिए बिगुल बजाया. भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और भारतवासियों के हृदय को खौलते पानी-सा उबाल दिया– उन्हें मर-मिटने के लिए तैयार किया. क्रांति की दिशा दी. कांग्रेस में आग लगाई. उसें दो फाड़ किये. वहां से भी लौट आये.' अरविंद प्रथम कहता ही जा रहा था, बिना अर्द्ध-विराम अल्प-विराम पर रुके.

'मुझे यह लिस्ट मत सुनाओ, अरविंद प्रथम, तुम मेरे कार्यों का लेखा-जोखा करने वाले कौन हो?'

अरविंद प्रथम मुस्कराया और गम्भीर होकर कहने लगा, 'जन प्रतिनिधि अरविंद द्वितीय. तुम मुझे बोलने से नहीं रोक सकते. ...तुम जेल क्या गये कि पक्के नेता बन गये. सारा भारत तुम्हारे पीछे हो लिया और ब्रितानी सरकार को यह एहसास करवा दिया कि तुम अकेले ही उसकी सत्ता का तख्ता उलट सकते हो.'

'ब्रिटिश सरकार का यह अनुमान गलत है.'

'जैसे तुम अपनी जगह सही हो, वैसे

ही उसका अनुमान अपनी जगह सही है, अरविंद द्वितीय. ...अलीपुर 30 मई, 1909 को उत्तरपाड़ा में हुआ था. 6 मई 1909 को तुम जेल से छूटे थे. 'धर्मरक्षिणी सभा' को तुमने सम्बोधित किया था और दस हज़ार श्रद्धालुओं की सभा ने तुम्हें स्तब्ध होकर सुना था. जिन्होंने तुम्हें पहले सुना था, उनका मानना था कि तुम वह अरविंद नहीं हो, जो ज्वालामुखी उछालता था. तुम एक वर्ष की जेल के निर्जनता में इतने बदल जाओगे कि तुम स्वयं को नहीं पहचान सकोगे तो फिर तुम्हारे साथी तुम्हें कैसे पहचानते, अरविंद द्वितीय.'

'यह समय कोर्ट-कचहरी जोड़ने का नहीं है, अरविंद प्रथम.'

'पहले अपनी आवाज़ सुनो जो तुमने उत्तरवाड़ा में बड़ी कशिश के साथ दस हज़ार श्रद्धालुओं को बचाने के लिए बुनी थी कि 'जिन्हें मैंने अपने साथ काम करते हुए पाया था, आज अनुपस्थित है. देशभर में जो तूफान आया था, उस तूफान ने उन सबको दूर-दूर बिखेर दिया है. ...और अब बाहर आकर देखता हूं कि सब कुछ बदल चुका है. मेरे साथ जो सदा उठते-बैठते थे और मेरे काम में जो सदा सहायता किया करते थे, आज वर्मा में कैद हैं और नज़रबंद हुए सड़ रहे हैं.''

'हां, भाई, हां कहा था. यह भी मैंने ही कहा था... जिनसे परामर्श और प्रेरणा पाने का अभ्यास मिला था, उन्हें तलाश किया.'

'वे तुम्हें नहीं मिले, क्यों, अरविंद द्वितीय?'

'हां, अरविंद प्रथम. तब मैंने ही कहा था कि जब मैं जेल गया था तब समूचा देश 'वंदे मातरम्' के महाघोष से गूंज रहा था और वह एक राष्ट्र बनने की उम्मीद से जीवित हो उठा था.'

'परंतु जब तुम जेल से बाहर आये तो तुम्हें ज्ञात हुआ कि वह महाघोष कहीं सुनाई नहीं पड़ रहा है. चारों ओर मरघट की-सी शांति है. लोग हक्के-बक्के नज़र आ रहे हैं. ...जहां पहले हमारे सम्मुख भविष्य की कल्पना से लबालब ईश्वर का स्वर्ग था, वहां हमने अपने सिर पर धूसर धुंध भरा ऐसा आकाश पाया, जो मानवीय वज्र और बिजली की वर्षा कर रहा है. कोई नहीं समझ-सोच पा रहा था कि उसे किधर चलना चाहिए? हर जन एक ही प्रश्न से घिरा हुआ था कि अब वह क्या करे? कैसे करे? और मैं भी नहीं जानता था कि अब क्या किया जा सकता है?' अरविंद प्रथम की ओर संकेत करते हुए वह आगे कहने लगा, 'परंतु एक बात का मैं साक्षी था कि ईश्वर की जिस महान् शक्ति ने उस ध्वनि को जगाया था, उस आशा का संचार किया था...'

'यह सन्नाटा भी उसी शक्ति ने भेजा है.'

'बेशक. वह ईश्वर जो उस उपद्रव

और आंदोलन में था, वही इन विश्राम तथा सन्नाटे में भी विद्यमान है.'

'वाह! वाह!! क्या कहना! उसी ईश्वर ने चाहा है कि इस बहाने राष्ट्र पल-भर के लिए रुककर अपने भीतर तलाशे और पता करे कि उसकी इच्छा क्या है? ...एक वर्ष के एकांतवास से, अरविंद द्वितीय तुम ईश्वर की शरण में ऐसे जा बैठे कि सब कुछ उसके हवाले कर दिया– पाप भी, पुण्य भी और बड़ी आसानी से, चतुराई से तुमने अपने को ज़िम्मेदारियों से मुक्त कर लिया. स्मरण है तब तुम्हें किस श्रद्धा-भक्ति से उस घोड़ागाड़ी को शायद तीसरी बार श्रद्धालुओं ने घोड़े हटाकर खींचा था. दूसरी बार नासिक में भी तुम्हारे साथ ऐसा हुआ था. बाहरी श्रद्धा की यह पराकाष्ठा है कि घोड़ों के स्थान पर आदमी जुते, जय-जयकार करे और फूल वर्षा करे. तुम्हारे चक्र से सारा वातावरण सुगंधित हो उठे. एक सामान्य व्यक्ति को युवराज जैसा सम्मान दे.'

'मुझे इस सबका पता नहीं था कि ऐसा होगा.'

'अभी तक ईश्वर को ही श्रद्धालुओं ने यह सम्मान दिया था कि रथ में वे स्वयं जुते और अपार प्रसन्नता से जुते– अपना सौभाग्य समझकर जुते और उसे खींचा.'

'हां, शायद तुम ठीक कह रहे हो, अरविंद प्रथम. परंतु मेरे रोकने से वे रुकते नहीं. मैं श्रद्धा बल के सामने अवाक् और निष्क्रिय रह गया था.'

'तुम ही नहीं, अरविंद द्वितीय, हर छोटा-बड़ा मानुष यही कहेगा. तुम्हें तो जेल में ईश्वर मिल चुके थे– तुम्हारे शब्दों में कहूं तो वासुदेव– वह वासुदेव जो स्रष्टा हैं, और सारी सृष्टि को संभालने वाले हैं. वहीं वासुदेव तुम्हें मंत्र देते हैं, कि हे अरविंद द्वितीय, कि अब से तुम नहीं, तुम्हारे में वे स्वयं बोल रहे हैं.'

'यही सच है, अरविंद प्रथम, मैं असत्य और मिथ्या बात नहीं करता.'

'तभी तो धधकते हुए अंगारों पर स्वाभिमान से, नंगे पांव चलने वाला नायक सनातन धर्म के रहस्य को उद्घाटित करने लगा कि सनातन धर्म क्या है यह विश्वव्यापी धर्म है. यही वह धर्म है जो हर जीव-निर्जीव, जड़-चेतन को यह अनुभव कराता है कि सब उसी में निवास करते हैं. यही वह धर्म है जो वासुदेव की लीला को हृदयंगम होने देता है. और इस प्रकार तुम श्रद्धालुओं को यह भरोसा दिला सके कि तुम वही कह रहे हो जो वह तुमसे कहलवा रहा है. तब तुमने कहा था, और अब वह तुमसे कहलवा रहा है कि वे आंदोलन राजनीतिक और राष्ट्रीय राजनीति नहीं बल्कि एक अटल विश्वास है, एक धारणा के.'

'कि सनातन धर्म ही हमारी राष्ट्रीयता है. हमारे और भारत देश के होने की पहचान है, प्रतिष्ठा है, शक्ति है. यही वह

धर्म है जो अपने भीतर विज्ञान के आविष्कारों और दर्शनशास्त्र के चिंतनों का पूर्वाभास कराकर और उन्हें अपने भीतर सम्मिलित कर जड़वाद पर सफलता दिला सकता है.'

'वह (ईश्वर/ वासुदेव) सब जगह है, छोटे-से कण से लेकर विशाल से पहाड़ तक में. उसने तुम्हें आदेश किया है कि तुम जाति के उत्थान में सहायक बनो. सनातन धर्म का यही सत्य है. ये इसी धर्म को संसार के सामने उठा रहे हैं. जिसे तुम पहले नहीं जानते थे, उसे वे तुम्हारे सामने प्रकट कर चुके हैं. श्रद्धालु सुन रहे थे और साश्चर्य देख रहे थे– अरविंद में से उठते हुए वासुदेव को. ...चतुर्दिक् घननाद हो रहा था– भगवान् तुमसे कह रहे थे, यही वह युवक दल है, यही वह नवीन और बलवान जाति है जो मेरे आदेश से ऊपर उठ रही है. ये तुमसे अधिक बड़े हैं. फिर तुम्हें किस बात का डर है? तुम्हें इस देश को एक वाणी सुनाने के लिए मुझसे बल प्राप्त हुआ है, यह वाणी इस जाति को ऊपर उठाने में सहायक होगी. ...क्या यह संदेह से परे कथन नहीं है, अरविंद द्वितीय.'

'मुझे इस सम्बंध में कुछ नहीं कहना.'

'परंतु मुझे कहना है क्योंकि मैं वासुदेव या श्रीकृष्ण नहीं हूं, एकमात्र जन प्रतिनिधि हूं– किसी हाउस ऑफ कॉमन या हाउस ऑफ लॉर्ड का नहीं. मुझे तुमसे पूछने का पूरा-पूरा हक है. मेरे कान में भी तुम्हारे उस वासुदेव की आवाज़ आ रही है– सुनना चाहोगे?'

'मैं तुम्हें कैसे रोक सकता हूं, अरविंद प्रथम, क्योंकि तुम भी उसी वासुदेव की आवाज़ सुन रहे हो, जिसकी मैं सुन चुका हूं और उसने मुझसे कहा है कि मैं उनमें भी हूं जो मेरा विरोध कर रहे हैं.'

'ज़रा अपने सोच पर ज़ोर देकर तो देखो और ढंग से याद करो कि उसने ऐसा कहा था या तुम्हें ठीक से याद नहीं रहा अथवा तुमसे उसे उल्था करने में कोई भूल हो गयी?'

'ऐसा कुछ नहीं हुआ है, अरविंद प्रथम. मेरी स्मरण-शक्ति पर उसकी अनुकम्पा है.'

'चंद्रनगर जाने पर कुछ लोगों की टिप्पणियां अनुकूल नहीं थीं. यदि तुम पांडिचेरी चले गये तो उन लोगों की टिप्पणियां कारगर होकर सामने आयेंगी. वे तुम्हें भीरू, पलायनवादी, कर्तव्य-विमुख आदि न जाने क्या-क्या कहेंगे.'

'जानते हो, श्रीकृष्ण को भी रणछोड़ नाम मिला है और उन्होंने सहज मान भी

'मैं तुम्हें कैसे रोक सकता हूं, अरविंद प्रथम, क्योंकि तुम भी उसी वासुदेव की आवाज़ सुन रहे हो, जिसकी मैं सुन चुका हूं और उसने मुझसे कहा है कि मैं उनमें भी हूं जो मेरा विरोध कर रहे हैं.'

लिया है. जबकि मैं तो श्रीकृष्ण का एक भक्त मात्र हूं.'

'तुम्हारी इस बात पर कौन विश्वास करेगा कि तुम्हें ईश्वर ने आदेश दिया है? ...कोई नहीं, अरविंद द्वितीय, कोई भी नहीं.'

'कौन विश्वास करेगा, कोई नहीं. मैं ईश्वर की आवाज़ किसी को सुनवा नहीं सकता और न किसी को उनके दर्शन करवा सकता हूं. अरविंद प्रथम, यहां प्रश्न किसी के विश्वास अथवा अविश्वास का नहीं है. यहां प्रश्न मेरे विश्वास का है. ...कृपया तुम इस सवाल को यहीं छोड़ दो.'

'मेरा काम खत्म, अरविंद द्वितीय. यह जानते हुए कि यह यात्रा संकट भरी है और सरकार की आंख में धूल झोंकना सरल भी नहीं है. फिर भी, मेरी मंगलकामनाएं तुम्हारे साथ हैं.'

सब कुछ अनदेखा-सा अदृश्य. अरविंद ने आंखें खोल दीं. आज उनको हल्की-सी थकान का अनुभव भी हुआ. शरीर भी कुछ शिथिल हुआ. वे एक गहरे संवादीय यात्रा से होकर लौटे थे. वही छोटा-सा कमरा. शांत. मद्धिम रोशनी का प्रतीक. शिशु की तरह आंखें खोल अपने चारों ओर अपलक निहार रहा था अचरज से आश्चर्य तक डूबा हुआ.

जैसे ही अरविंद ने नीचे देखा एक परचा नज़र आया. उस पर लिखा हुआ था 'वह व्यक्ति मिल गया है. हमने यहां एक घंटे बैठकर प्रतीक्षा की, आप ध्यानावस्था में थे, अत: हम लौट रहे हैं. रात को सात बजे पुन: आयेंगे, सुभीता रहे तो मिल लीजिएगा. आपका–मोतीलाल राय.'

अरविंद उठे और अंदर ही टहलने लगे. उन्होंने सोचना बंद कर दिया. उन्हें यह स्थिति अत्यंत आनंददायक प्रतीत होती थी, जिसका वे चाहें तो भी वर्णन नहीं कर सकते थे. टहलते-टहलते वे अचानक रुके और परचे को उठाया और उसके पीछे लिख दिया– प्रिय राय, कल सुबह, दस बजे से बारह के बीच में अपने मित्र को लाने का कष्ट कर सकें, तो मेरे लिए सुभीताजनक रहेगा. इसके बाद वह परचा दरवाज़े के पास रखकर उस पर एक छोटी खाली शीशी रख दी और टहलने लगे.

●●●

आज आकाश सुनहरा था. उससे समस्त धरा सुनहरी हो उठी थी. यहां तक कि कलरव करते हुए पक्षी वृंद भी सुनहरे हो चले थे. पवन एकदम स्वस्थ और ताज़गी से भरे अल्हड़ नवयुवक-सा मन-ही-मन हर्षोन्माद से भरता जा रहा था. सर्वथा एक नयी सुबह. नयी सुबह का नवल वातावरण. अथाह, अनंत जल राशि को सम्पादित करता समुद्र अतीत भव्य लग रहा था.

अरविंद गहरे मूक थे. उनके चौड़े माथे पर चमक थी. उनके केश बीच से दो भागों में विभाजित थे और पीछे से गर्दन पर आ गये थे. उनकी दाढ़ी पहले से घनी थी और नीचे जाकर नुकीली हो जाने का प्रयास कर रही थी. अब वे अड़तीस वर्ष के हो चुके थे. ज़िंदगी के उन अंतः सूत्रों को संग्रहीत कर रहे थे जिनके बारे में उनका सम्बोध नाम मात्र का भी नहीं था. परंतु उनके मन को वह सब अनुकूल लग रहा था. उनके हृदयाम्बर पर यदा कदा तड़ित मूक हुई, पूरे वेग से ऐसे चमकती थी. उससे कण-कण का प्रतिकण द्युतिमान् हो उठता था. एक अनुगूंज सदा उनको सुनाई पड़ती थी– प्रवासी, उठो, यहां सदा बैठे हुए तुम्हें चलते जाना है, अबाध और सम गति से, बिना पीछे मुड़े, दायें-बायें देखे, एकदम नाक की सीध में, चलते जाना है. चाहे समंदर आये या पहाड़, तूफान आये अथवा भूचाल, रात अंधेरी हो या सांपिन-सी फन फैलाए डंसने वाली, परंतु चिंता नहीं, सोच-विचार नहीं.

अब से यहीं तुम्हारा रैन बसेरा है. यही तुम्हारा आदि स्थान है और यही आखिरी स्थान है. यही तुम्हारी तपोभूमि है और यही लीलाभूमि. चराचर की समस्त अनुभूतियों का यही संगम स्थान है.

कुछ खटपट सुनायी पड़ी. वह आवाज़ अंतर्धान हो गयी. निवासाचारी थे. उनके पीछे-पीछे कुछ क्षण बाद आये थे तमिल महाकवि सुब्रह्मण्यम् भारती. अनेक राजनीतिक शरणार्थी पांडिचेरी में डेरा डाले हुए थे. एक छोटी-सी कॉलोनी बसती चली गयी थी. निवासाचारी नमन करके देख रहे थे– सौष्ठवरहित संरचना के उस सम्मोहन को जिससे सौंदर्य ठगा-सा रह गया था. सुब्रह्मण्यम् भारती पूछ रहे थे 'कुछ असुभीता तो नहीं है.'

'आप लोगों के होते हुए क्या असुभीता इतना दुस्साहस कर सकती है!'

इस पर सब हंस पड़े. वहां का कण-कण खिल उठा.

'पहले हम सोच रहे थे कि आप जैसा महान् नायक पांडिचेरी जैसे छोटे और कम सुरक्षित नगर में क्यों कर शरण लेना चाहेगा?' श्री सुब्रह्मण्यम् भारती ने कहा.

'इसका कारण मैं नहीं जानता. क्या भारतीजी, सब कुछ जानने से होता है? क्या हम सब कुछ जानते हैं? क्या वही सब अचानक नहीं घटता, जिसे हम नहीं जानते? हालांकि मैं ठीक से इस सम्बंध में नहीं कह सकता. फिर भी, मानता यही हूं कि कोई अन्य शक्ति है जो हमारी इच्छा के विरुद्ध भी अपने काम करा लेती है.' अरविंद ने धीरे-धीरे ऐसे कहा जैसे वे नहीं, उनमें कोई दूसरा बोल रहा है.

सुब्रह्मण्यम् भारती की कवि चेतना ने तीसरी दृष्टि खोली और एक स्वर गूंज उठा– मुझे न धर्म की ज़रूरत है, न

विज्ञान की और न मात्र वेद की. मुझे तो ऐसा सत्य चाहिए जो मतामत से परे है और ऐसा ज्ञान जिसे समस्त विचार चाहते हैं. वह सोचते हुए कहने लगे. 'कोई अन्य शक्ति है. हम तो मात्र उसके हाथ की कठपुतली हैं और मिथ्या भ्रम पाले हैं कि उसके संचालक हम हैं.'

'बीच में बोलने की गुस्ताखी के लिए मैं पहले ही क्षमा मांग लेना चाहता हूं.' श्री निवासाचारी ने कहा.

'आप नि:संकोच कहिए.'

'फ्रांस से पॉल रिचार्ड आये हैं. वे विद्वान हैं. इस समय वे राजनीतिक कार्य से आये हैं. वे जब से आये हैं मुझसे एक ही आग्रह बनाये हुए हैं कि मैं उनको किसी योगी से मिलवा दूं. इसी कारण हम लोग आपके पास आये हैं.'

'मैं योगी कहां हूं.' फिर भी बुलवा लीजिए.

श्रीनिवासाचारी उठने लगे तो अरविंद ने उन्हें रोकते हुए कहा, 'आप बैठे रहिए, विजय, जो फ्रांसीसी सज्जन बाहर खड़े हुए हैं, उन्हें अंदर लिवा लाओ.'

वे युवक थे. अच्छी कद-काठी के स्मार्ट और सुदर्शन. नमन किया. बैठ गये. अरविंद ने कहा, 'आप यहां किसी और योगी की तलाश में आये हैं.'

पॉल रिचार्ड ने हल्के-से कंधे उचकाकर, गर्दन सीधी की और विनम्रता से कहा, 'मैं यहां से लौटूंगा तो मेरे मित्र पूछेंगे कि वहां से क्या लाये?'

'मैं सामान्य भारतीय हूं. फिर भी आपकी जिज्ञासाओं का उत्तर देने का प्रयत्न करूंगा.'

'कृपया मुझे योग के बारे में जानना है.'

'कई पुस्तकें हैं, रिचार्ड, नाम जानना चाहोगे.'

'मैं पुस्तकों के माध्यम से नहीं आपसे जानना चाहता हूं.'

'मैं इस राह का यायावर हूं, रिचार्ड.'

'आप जो भी हैं, मेरे जानने का आधार आप ही हैं, मि. अरविंदो.'

'आपके विश्वास की मैं कद्र करता हूं, रिचार्ड. हमारा समूचा जीवन एक योग है, रिचार्ड. सबके साथ रहकर सर्वहित में करने वाली साधना ही योग है.'

'यानी इसके लिए संसार छोड़ने की ज़रूरत नहीं है, मि. अरविंदो.' पॉल रिचार्ड ने पांव पर पांव चढ़ाकर कहा.

'बिल्कुल नहीं, रिचार्ड.'

'फिर?'

'ईश्वर तक अपनी चेतना को ले जाना. वहां स्थिर नहीं रह जाना और न उस ईश्वरानंद में लीन होकर रह जाना. हमें वहां से लौटना भी है.'

'हमारे शास्त्रों ने ईश्वर की प्राप्ति के तीन मार्ग सुझाये हैं. वेद-उपनिषद् में हमारे ऋषि-मुनियों ने बतलाया है कि ईश्वर की प्राप्ति का एक मार्ग है– ज्ञान मार्ग. दूसरा

भक्ति मार्ग या प्रेम मार्ग. हमारे संतों ने बताया है कि उत्कट भक्ति या प्रेम से ईश्वर तक पहुंचा जा सकता है. तीसरा मार्ग है– कर्म मार्ग. नि:स्वार्थ और तल्लीन सेवा कार्य करते हुए ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है. ...मुझे लगा है कि एक और योग है– पूर्णयोग. इसमें इन तीनों मार्गों का समन्वय है. ये सब ईश्वर को पाने के माध्यम हैं. प्रत्येक मार्ग एक-दूसरे के पूरक हैं, एक-दूसरे से अलग नहीं हैं.' अरविंद ध्यान-मग्न होकर कहते जा रहे थे.

'मैंने कुछ योगियों को एक पांव से खड़े होते देखा है और किसी को सिर नीचा और पांव ऊपर किये हुए.'

'ये हठयोग है. इसमें नेती-धोती, आसन इत्यादि क्रियाएं की जाती हैं और नाटक, धारणा ध्यानादि के माध्यम से चित्रवृत्ति को बाहरी विषयों से हटाकर अंतर्मुखी करते हैं. ...लेकिन ईश्वर तक पहुंचने के लिए समग्र समर्पण का मार्ग सर्वोपरि है. सब उस पर छोड़िए, वह स्वयं भागा-भागा आयेगा– कहीं जाने की ज़रूरत नहीं, कुछ करने की ज़रूरत नहीं, मात्र समर्पण चाहिए. एक बार आत्मा ईश्वर को या परम शक्ति को पुकार उठे, पुकारती रहे तो बिना किसी पद्धति को अपनाये भी ईश्वर से साक्षात्कार सम्भव है.'

'क्या ईश्वर है, मि. अरविंदो.'

'हां है और मैंने न उसे देखा है अपितु सुना भी है लेकिन मैं उसे न तुम्हें दिखा सकता हूं और न उसे सुना सकता हूं. ...तुम्हारे मन में यह प्रश्न किसलिए उठा? क्या मात्र कुतूहलवश? क्योंकि तुम्हारा क्षेत्र राजनीति है, आत्मा-परमात्मा या ईश्वर नहीं है. मैं यह नहीं कहता कि ऐसा हो नहीं सकता, हो सकता है परंतु उसकी कृपा के बिना नहीं.'

'तो क्या इसके लिए गुफा, घने एकांतवास में जाना होगा, मि. अरविंदो?' इस बार पॉल रिचार्ड की नीली आंखें स्वत: ही स्वप्निल हो उठीं. उनकी आंखों से भूरापन हटने लगा. यह चिह्न सुब्रह्मण्यम् भारती तल्लीनता से नोट कर रहे थे कि अरविंद के पास, कुछ नज़दीक आने पर, उनसे मिल रहे व्यक्ति में क्या परिवर्तन होने लगता है और वह भी स्वत: ही बिना किसी प्रयास-प्रयत्न के. उन्हें पुराने ऋषि-मुनियों के से क्रोध-आवेश, उत्तेजना, दुर्गुण आदि ऐसे हटने लगते थे जैसे पहले वे सब उसके चरित्र के अभाज्य न हों. ऋषि-मुनि तक पहुंचते-पहुंचते वह

...लेकिन ईश्वर तक पहुंचने के लिए समग्र समर्पण का मार्ग सर्वोपरि है. सब उस पर छोड़िए, वह स्वयं भागा-भागा आयेगा– कहीं जाने की ज़रूरत नहीं, कुछ करने की ज़रूरत नहीं, मात्र समर्पण चाहिए.

आत्म-स्वरूप रह जाता था.

'कहीं नहीं जाना होगा, रिचार्ड. घर में रहकर भी यह सम्भव है. कारण, ईश्वर की चेतना का जो अलौकिक, दिव्य और तेजोमय प्रकाश हमारे अंदर मौजूद है और जिसकी ओर से हम मुंह फेरे हुए हैं, यदि उसकी ओर हम घूमने लगते हैं, स्थिर होने लगते हैं और शनैः-शनैः पहले अपने को और फिर उसे अनुभव करने लगते हैं तो हम स्वतः अपने लक्ष्य तक पहुंच जाएंगे जैसे एक व्यक्ति तैराकी सीख लेता है, फिर वह जल की सतह के साथ तैरे या उसमें गहरा डूबकर, यह उस व्यक्ति पर निर्भर है और वह व्यक्ति आत्म-चेष्टा के बल पर अपना मानस बना सकता है.'

'उसे कैसे पुकारें?'

'जैसे कोई बहुत क्षुधाग्रस्त व्यक्ति, अंदर की पूरी ताकत समेटकर रोटी के लिए पुकारता है. वह जानता है कि रोटी का टुकड़ा नहीं मिला तो वह मर जायेगा.'

'यानी उसके पुकारने के पीछे डर है– मरने का डर.'

'क्योंकि वह पुकार भौतिक वस्तु के लिए है. डर भौतिकता की पहचान है. 'मैं' ही डर के वजूद को बनाये रखने का पोषक है. मैं परक जितनी भी उपलब्धियां और सफलताएं हैं, उनमें भय किसी-न-किसी रूप से विद्यमान है.' अरविंद ने गहरी सांस छोड़ते हुए खिड़की पर हिलते हुए पर्दे के पार ऐसे देखा, जैसे वहां कोई इबारत लिखी हुई हो, जिसे पढ़कर अरविंद सुना रहे हैं.

'फिर कैसे पुकारें?'

'रिचार्ड तुमने किसी मां के शिशु को नज़दीक से देखा है.'

'हां देखा है– जहां हम पेरिस में रहते हैं.'

'उसकी देख-रेख कौन करता है?'

'उसके लिए एक आया छोड़ रखी है, अरविंदो–दिन-रात के लिए.'

'वह रोता भी होगा.'

'कभी-कभी तो अपने आस-पड़ोस को भी वह सिर पर उठा लेता है.'

'तब क्या होता है?'

'आया उसे चुप करा देती है.'

'कैसे?'

'गोदी में खिलाकर, झूले में झूलाकर, दूध की बोतल मुंह से लगाकर… और…और…'

'कितनी देर में वह चुप हो जाता है?'

'शायद दो-चार मिनट में.'

'जानते हो कैसे?'

'कैसे?'

'पोस्त के ढोंढ़ों का दूध में इस्तेमाल कर.'

'यानी अफीम से!'

'वह मां नहीं है, रिचार्ड, आया है. शिशु उसका नहीं है. उससे शिशु चुपकर सो जाता है. वह अफीम से नींद निकालता है. ऐसा ही मनुष्य के साथ

होता है. कभी वह स्वार्थ की नींद निकालता है, और काम-वासना, लोभ-क्रोध, धन-दौलत, मद आदि के चक्कर में, ताउम्र पड़ा रह जाता है. पुकार ऐसी होती है, रिचार्ड, जिससे पहाड़ कांप उठते हैं, नदियां रास्ता बदल लेती हैं, सागर लावा बन आसमान छूने लगते हैं, धरती कांपने लगती है और आसमान फट पड़ता है.' अरविंद की वाणी का सुकम्प दिलो-दिमाग को पार करता हुआ आत्म-लोक में प्रवेश कर चुका था. सब स्तब्ध थे. चित्रलिखित से.

क्या सचमुच अरविंद ने इस समय वासुदेव को पुकारा था और वह चला आया था? वे क्यों कांपने लगे थे? वे क्यों नहीं अपने में रह पाये? पॉल रिचार्ड हतप्रभ-सा रह गया था. वह ध्वनि अभी तक अनुगूंज रही थी. सम्पूर्ण वातावरण उसी ध्वनि से अनुगूंज रहा था. वह क्या आवाज़ थी. क्या शक्ति थी उस आवाज़ में.

अरविंद ने अर्द्ध-विराम का जटिल मौन खोलते हुए कहा, 'रिचार्ड, योग पूछकर जानने का ज्ञान नहीं है, जीवन में उतरने का, अपने से साक्षात्कार करने और सम्पूर्ण समर्पण का सहज मार्ग है, जिस पर बच्चे से लेकर किसी उम्र का व्यक्ति चल सकता है. वह ईश्वर का मार्ग है, उस तक पहुंचने और उससे मिलने का मार्ग है. ...मैं समझता हूं कि हमें यहीं विराम दे देना चाहिए. इससे आगे का रास्ता स्वयं चलकर तय करना है.'

'मेरा एक निवेदन है, अरविंदो.'

'कहिए, पॉल रिचार्ड.'

'मेरे आपसे मिलने के दो कारण हैं, अरविंदो. पहला कारण मैं स्टार ऑफ डेविट के प्रतीकार्थ के बारे में जानना चाहता हूं जो इस समय ब्रिटिश भारत से बाहर रहकर निर्वासन भोग रहे हैं.' पॉल रिचार्ड ने कहा.

'ब्रिटिश सत्ता की दृष्टि में, पॉल रिचार्ड, ऐसा वह और दूसरे अनुभव करते हैं. जैसे मैं भी ब्रिटिश भारत से बाहर हूं– उसे निर्वासन कहा जाए या स्वेच्छा से निर्वासन, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता. ...निर्वासन सेंट हेलीना में नेपोलियन को मिला था. यह वैसा निर्वासन नहीं है क्योंकि जब व्यक्ति अपने को ईश्वर के प्रति समर्पित कर देता है तो वह सम्पूर्ण धरा का यहां तक कि पूरे ब्रह्मांड का, बाशिंदा हो जाता है. फिर निर्वासन किसका?' अरविंद ने अभी अपनी बात जारी रखी, जैसे– मैं जानता हूं कि आपने महाभारत पढ़ा है, वेदांत योग के जिज्ञासु पात्र हैं. फ्रेंच भाषा 'में आपके स्त्रियों के अनुसार आप पॉल रिचार्ड नहीं, पाल रिशार हैं.'

इस बार सुब्रह्मणयम् भारती, श्रीनिवासचारी और पॉल रिचार्ड तीनों चौंके. क्या वे सब जानते हैं?

'चौंकिए नहीं, आप लोग. जो व्यक्ति अपने बारे में जानने लगता है, उसके लिए व्यक्ति दूसरा नहीं होता. यही तो योग का प्रथम मंत्र द्वार है–बारहखड़ी.' मुझे रिशार की अपेक्षा रिचार्ड कहना यहां की मानसिकता के लिए ठीक लगा. फिर क्या फर्क पड़ता है, यदि रिशार को हम रिचार्ड कहें, अरविंद को आप अरविंदो. योग इस नामात्मक के आगे, बहुत आगे ले जाता है, इतना आगे कि जहां नामात्मक जगत् बहुत पीछे छूट जाता है–एक अनाम जगत् में प्रवेश होता है. ...हां तो आपका दूसरा कारण, रिचार्ड. अरविंद की दृष्टि सामने की दीवार के पार थी.

'मेरी पत्नी– मीरा आल्फासा– जिन्हें आध्यात्मिक तथा आंतरात्मिक सम्बंध स्पष्ट से स्पष्टतर होते जा रहे हैं, ऐसा उनका मानना है.'

'मेरा मानना भी यह है, रिचार्ड. जो व्यक्ति ईश्वर की खोज के लिए सर्वस्व भूलकर आगे बढ़ने लगेगा, उसके लिए दीवारें रास्ता रोकने के काम नहीं आ सकतीं क्योंकि, वह दीवारें नहीं होतीं, घर नहीं होता, सम्बंध नहीं होते. वहां मात्र समर्पण होता है. ...जिनसे वह सर्वशक्ति जिसे आप किसी भी नाम से पुकारें, कोई महान् कार्य करवाना चाहती है, उसके साथ ऐसा ही होता है, रिचार्ड, जबकि सच यह भी है कि वह स्वयं भी इस बात को नहीं जानता.'

'क्या यह वह गुह्य विद्या है, अरविंदो?'

'मैं नहीं जानता, रिचार्ड, मेरे लिए कोई गुह्य विद्या नहीं है. सब कुछ स्पष्ट है.'

'मेरी पत्नी के लिए कोई संदेश?'

'कोई नहीं, रिचार्ड. मैं संदेश देने वाला कौन होता हूं.'

'कोई रास्ता?'

'अभी कहा था कि स्वयं जानना है. ठीक वैसे ही जैसे रिचार्ड तुम यहां तक चलकर आये. जानते हो कैसे?'

पॉल रिचार्ड में मौन पसरकर जड़ होने लगा. दिशाएं सिमटकर कछुए की गर्दन की तरह हो गयीं.

'तुम्हें मुझ तक वह जिज्ञासा लेकर आयी, जिसके बारे में तुमने सिर्फ सुना था और सुनकर जिसे जानने का तुम्हारा मन हुआ था. यहां तक तुम भारतीजी और श्रीनिवासाचारी के साथ आ सके. यहां तक आने का रास्ता– सड़क है, पगडंडी है. यहां बैठने के लिए भी साधन है– मकान हैं, कुर्सियां हैं. परंतु उस तक पहुंचने के लिए न सड़कें हैं, न पगडंडियां और न अन्य कोई साधन. वहां तो अकेले ही जाना पड़ेगा. वहां अंतःकरण की आवाज़ ले जाएगी, रिचार्ड. ...' अरविंद इसी के साथ उठ खड़े हुए.

पॉल रिचार्ड ने उनके पांव छुए और उनका आशीर्वाद लिया. वे सब लौट पड़े.

(क्रमशः)

आत्मकथ्य

मैं कहानीकार नहीं, जेबकतरा हूं

● सआदत हसन मंटो

मेरी ज़िंदगी में तीन बड़ी घटनाएं घटी हैं. पहली मेरे जन्म की. दूसरी मेरी शादी की और तीसरी मेरे कहानीकार बन जाने की.

लेखक के तौर पर राजनीति में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है. लीडरों और दवाफरोशों को मैं एक ही नज़र से देखता हूं. लीडर और दवाफरोशी दोनों पेशे हैं. राजनीति से मुझे उतनी ही दिलचस्पी है, जितनी गांधीजी को सिनेमा से थी. गांधीजी सिनेमा नहीं देखते थे, और मैं अखबार नहीं पढ़ता. दरअसल हम दोनों गलती करते हैं. गांधीजी को फिल्में ज़रूर देखनी चाहिए थीं, और मुझे अखबार ज़रूर पढ़ने चाहिए.

मुझसे पूछा जाता है कि मैं कहानी कैसे लिखता हूं. इसके जवाब में मैं कहूंगा कि अपने कमरे में सोफे पर बैठ जाता हूं, कागज़-कलम लेता हूं और 'बिस्मिल्ला' कहकर कहानी शुरू कर देता हूं. मेरी तीनों बेटियां शोर मचा रही होती हैं. मैं उन से बातें भी करता हूं. उनके लड़ाई-

झगड़े का फैसला भी करता हूं. कोई मिलने वाला आ जाए तो उसकी खातिरदारी भी करता हूं, पर कहानी भी लिखता रहता हूं, सच पूछिए तो मैं वैसे ही कहानी लिखता हूं, जैसे खाना खाता हूं, नहाता हूं, सिगरेट पीता हूं और झक मारता हूं.

अगर पूछा जाए कि मैं कहानी क्यों लिखता हूं, तो कहूंगा कि शराब की तरह कहानी लिखने की भी लत पड़ गयी है. मैं कहानी न लिखूं, तो मुझे ऐसा लगता है कि मैंने कपड़े नहीं पहने हैं या गुसल नहीं किया है या शराब नहीं पी है. दरअसल मैं कहानी नहीं लिखता हूं, बल्कि कहानी मुझे लिखती है. मैं बहुत कम-पढ़ा लिखा आदमी हूं. वैसे तो मैंने दो दर्जन किताबें लिखी हैं और जिस पर आये दिन मुकदमे चलते रहते हैं. जब कलम मेरे हाथ में न हो, तो मैं सिर्फ सआदत हसन होता हूं!

कहानी मेरे दिमाग में नहीं, मेरी जेब में होती है, जिसकी मुझे कोई खबर नहीं होती. मैं अपने दिमाग पर ज़ोर देता हूं कि कोई कहानी निकल आये. कहानी लिखने की बहुत कोशिश करता हूं, पर कहानी दिमाग से बाहर नहीं निकलती. आखिर थक-हारकर बांझ औरत की तरह लेट जाता हूं. अनलिखी कहानी की कीमत पेशगी वसूल कर चुका हूं, इसलिए बड़ी झुंझलाहट होती है. करवट बदलता हूं. उठकर अपनी चिड़ियों को दाने डालता हूं. बच्चियों को झूला झुलाता हूं. घर का कूड़ा-करकट साफ़ करता हूं, घर में इधर-उधर बिखरे नन्हें-मुन्ने जूते उठाकर एक जगह रखता हूं, पर कमबख्त कहानी जो मेरी जेब में पड़ी होती है, मेरे दिमाग में नहीं आती और मैं तिलमिलाता रहता हूं.

जब बहुत ही ज़्यादा कोफ्त होती है, तो गुसलखाने में चला जाता हूं, पर वहां से भी कुछ मिलता नहीं. सुना है कि हर बड़ा आदमी गुसलखाने में सोचता है. मुझे अपने तजुर्बे से पता लगा है कि मैं बड़ा आदमी नहीं हूं, पर हैरानी है कि फिर भी मैं हिंदुस्तान और पाकिस्तान का बहुत बड़ा कहानीकार हूं. इस बारे में मैं यही कह सकता हूं कि या तो मेरे आलोचकों को खुशफहमी है या फिर मैं उनकी आंखों में धूल झोंक रहा हूं.

ऐसे मौकों पर, जब कहानी नहीं ही लिखी जाती, तो कभी यह होता है कि मेरी बीवी मुझसे कहती है– 'आप सोचिए नहीं, कलम उठाइए और लिखना शुरू कर दीजिए!' मैं उसके कहने पर लिखना शुरू कर देता हूं. उस समय दिमाग बिल्कुल खाली होता है, पर जेब भरी हुई होती है. तब अपने आप ही कोई कहानी उछलकर बाहर आ जाती है. उस नुक्ते से मैं खुद को कहानीकार नहीं, बल्कि जेबकतरा समझता हूं जो अपनी जेब खुद काटता है और लोगों के हवाले कर देता है.

मैंने रेडियो के लिए जो नाटक लिखे,

वे रोटी के उस मसले की पैदावार हैं, जो हर लेखक के सामने उस समय तक रहता है, जब तक वह पूरी तरह मानसिक तौर पर अपाहिज न हो जाए. मैं भूखा था, इसलिए मैंने यह नाटक लिखे. दाद इस बात की चाहता हूं कि मेरे दिमाग ने मेरे पेट में घुसकर ऐसे हास्य-नाटक लिखे हैं, जो दूसरों को हंसाते हैं, पर मेरे होठों पर हल्की-सी मुस्कराहट भी पैदा नहीं कर सके.

रोटी और कला का रिश्ता कुछ अजीब-सा लगता है, पर क्या किया जाए! खुदाबंदताला को यही मंजूर है. यह गलत है कि खुदा हर चीज़ से खुद को निर्लिप्त रखता है और उसको किसी चीज़ की भूख नहीं है. दरअसल उसे भक्ति चाहिए और भक्ति बड़ी नर्म और नाजुक रोटी है, बल्कि चुपड़ी हुई रोटी है, जिस से ईश्वर अपना पेट भरता है. सआदत हसन मंटो लिखता है, क्योंकि वह ईश्वर जितना कहानीकार और कवि नहीं है. उसे रोटी की खातिर लिखना पड़ता है.

मैं जानता हूं कि मेरी शख्सियत बहुत बड़ी है और उर्दू साहित्य में मेरा बहुत बड़ा नाम है. अगर यह खुशफहमी न हो तो ज़िंदगी और भी मुश्किल बन जाए. पर मेरे लिए यह एक तल्ख हकीकत है कि अपने मुल्क में, जिसे पाकिस्तान कहते हैं, मैं अपना सही स्थान ढूंढ़ नहीं पाया हूं. यही वजह है कि मेरी रूह बेचैन रहती है. मैं कभी पागलखाने में और कभी अस्पताल में रहता हूं.

मुझसे पूछा जाता है कि मैं शराब से अपना पीछा क्यों नहीं छुड़ा लेता? मैं अपनी ज़िंदगी का तीन-चौथाई हिस्सा बदपरहेजियों की भेंट चढ़ा चुका हूं. अब तो यह हालत है कि परहेज शब्द ही मेरे लिए डिक्शनरी से गायब हो गया है.

मैं समझता हूं कि ज़िंदगी अगर परहेज से गुजारी जाए, तो एक कैद है. अगर वह बदपरहेजियों में गुजारी जाए, तो भी कैद है. किसी-न-किसी तरह हमें इस जुराब के धागे का एक सिरा पकड़कर उसे उधेड़ते जाना है और बस! ❑

हिंदू- संस्कृति का रहस्य

खेतों में उगती हुई सब्जियां, क्यारियों में बहता पानी, ढेकुल और उगते हुए अनेक फल-फूल, ये सब मुझे एक अकथनीय और अनुपम अवस्था में डाल देते थे. जानवर और उनके बच्चे, डाल पर बैठी हुई या उड़ती हुई चिड़ियां और उनके बच्चे, साधारण स्त्री-पुरुषों के गाए हुए लोकगीत या उनकी सुनाई हुई लोककथाएं– यही दिव्यता, हृदयग्राह्यता, अकथनीय मान्यताओं की अनुभूति, साधारण में असाधारण की झलक, यही अपनत्व शायद हिंदू- संस्कृति का रहस्य है. **– फिराक**

एक कुत्ता और एक मैना

● हजारी प्रसाद द्विवेदी

आज से कई वर्ष पहले गुरुदेव के मन में आया कि शांति निकेतन को छोड़कर कहीं अन्यत्र जाएं. स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं था शायद इसीलिए या पता नहीं क्यों, तब पाया कि वे श्रीनिकेतन के पुराने तिमंजिले मकान में कुछ दिन रहें. शायद मौज में आकर ही उन्होंने यह निर्णय किया हो. वह सबसे ऊपर के तल्ले में रहने लगे. उन दिनों ऊपर तक पहुंचने के लिए लोहे की चक्करदार सीढ़ियां थीं और वृद्ध और क्षीणवपु रवींद्रनाथ के लिए उस पर चढ़ सकना असम्भव था. फिर भी बड़ी कठिनाई से वहां ले जाया जा सका.

उन दिनों छुट्टियां थीं. आश्रम के अधिकांश लोग बाहर चले गये थे. एक दिन हमने सपरिवार उनके 'दर्शन' की ठानी. 'दर्शन' को मैं जो यहां विशेषरूप से दर्शनीय बनाकर लिख रहा हूं, उसका कारण यह कि गुरुदेव के पास जब कभी मैं जाता था, प्रायः यह कहकर मुस्कुरा देते थे कि 'दर्शनार्थी हैं क्या?' शुरू-शुरू में मैं उनसे ऐसी बांग्ला में बात करता था, जो वस्तुतः हिंदी-मुहावरों का अनुवाद हुआ करती थीं. किसी बाहर के अतिथि को जब मैं उनके पास ले जाता था तो कहा करता था, एक भद्र लोक आपनार दर्शनेर जन्य ऐसे छेन. यह बात हिंदी में जितनी प्रचलित है, उतनी बांग्ला में नहीं. इसलिए गुरुदेव जरा मुस्कुरा देते थे. बाद में मुझे मालूम हुआ कि मेरी यह भाषा बहुत अधिक पुस्तकीय है और गुरुदेव ने उस 'दर्शन' शब्द को पकड़ लिया था. इसलिए जब कभी मैं असमय में पहुंच जाता था तो वह हंसकर पूछते थे- 'दर्शनार्थी लेकर आये हो क्या?' यहां यह दुख के साथ कह देना चाहता हूं कि अपने देश के दर्शनार्थियों में कितने ही ऐसे प्रगल्भ होते थे कि समय-असमय, स्थान-अस्थान, अवस्था-अनवस्था की एकदम परवाह नहीं करते थे और रोकते रहने पर भी आ ही जाते थे. ऐसे 'दर्शनार्थियों' से गुरुदेव कुछ भीत-भीत से रहते थे. अस्तु, मैं मय बाल-बच्चों के एक दिन श्रीनिकेतन जा पहुंचा. कई दिनों से उन्हें देखा नहीं था.

गुरुदेव यहां बड़े आनंद में थे. अकेले रहते थे. भीड़-भाड़ उतनी नहीं होती थी,

जितनी शांतिनिकेतन में. जब हम लोग ऊपर गये तो गुरुदेव बाहर एक कुर्सी पर चुपचाप बैठे अस्तगामी सूर्य की ओर ध्यान-स्तिमित नयनों से देख रहे थे. हम लोगों को देखकर मुस्कुराए, बच्चों से जरा छेड़छाड़ की, कुशल-प्रश्न पूछे और फिर चुप हो रहे. ठीक उसी समय उनका कुत्ता धीरे-धीरे ऊपर आया और उनके पैरों के पास खड़े होकर पूंछ हिलाने लगा. गुरुदेव ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा. वह आंखें मूंदकर अपने रोम-रोम से उस स्नेह-रस का अनुभव करने लगा. गुरुदेव ने हम लोगों की ओर देखकर कहा, 'देखा तुमने, यह आ गये. इन्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं यहां हूं, आश्चर्य है! और देखो, कितनी परितृप्ति इनके चेहरे पर दिखाई दे रही है!'

हम लोग उस कुत्ते के आनंद को देखने लगे. किसी ने उसे राह नहीं दिखाई थी, न उसे यह बताया था कि उसके स्नेहदाता यहां से दो मील दूर हैं और फिर भी वह पहुंच गया. इसी कुत्ते को लक्ष्य करके उन्होंने 'आयोग्य' मे इस भाव की एक कविता लिखी थी– 'प्रतिदिन प्रात: काल यह भक्त कुत्ता स्तब्ध होकर आसन के पास तब तक बैठा रहता है, जब तक अपने हाथों के स्पर्श से मैं इसका संग नहीं स्वीकार करता. इतनी-सी स्वीकृति पाकर ही उसके अंग-अंग में आनंद का प्रवाह बह उठता है. इस वाक्यहीन प्राणिलोक में सिर्फ यही एक जीव अच्छा-बुरा सबको भेदकर सम्पूर्ण मनुष्य को देख सका है; उस आनंद को देख सका है, जिसे प्राण दिया जा सकता है, जिसमें अहैतुक प्रेम ढाल दिया जा सकता है, जिसकी चेतना असीम लोक में राह दिखा सकती है. जब मैं इस मूक हृदय का प्राणपण आत्मनिवेदन देखता हूं, जिसमें वह अपनी दीनता बताता रहता है, तब मैं यह सोच ही नहीं पाता कि उसने अपने सहज बोध से मानव-स्वरूप में कौन-सा अमूल्य आविष्कार किया है; इसकी भाषाहीन दृष्टि की करुण व्याकुलता जो कुछ समझती देती है.' इस प्रकार कवि ने मर्मभेदी दृष्टि से इस भाषाहीन प्राणी की करुण दृष्टि के भीतर उस विशाल मानव सत्य को देखा है, जो मनुष्य के अंदर भी नहीं देख पाता.

मैं जब यह कविता पढ़ता हूं तब मेरे सामने श्रीनिकेतन के तितल्ले पर की वह घटना प्रत्यक्ष-सी हो जाती है. वह आंख मूंदकर अपरिसीम आनंद, वह 'मूक हृदय का प्राणपण आत्मनिवेदन' मूर्तिमान हो जाता है. उस दिन मेरे लिए वह एक छोटी-सी घटना थी, आज वह विश्व की अनेक महिमाशाली घटनाओं की श्रेणी में बैठ गयी है. एक आश्चर्य की बात इस प्रसंग में और उल्लेख की जा सकती है. जब गुरुदेव का चिताभस्म कलकत्ते से आश्रम में लाया गया, उस समय भी न

जाने किस सहज बोध के बल पर वह कुत्ता आश्रम के द्वार तक आया और चिंताभस्म के साथ अन्यान्य आश्रमवासियों के साथ शांत-गम्भीर भाव से उत्तरायण तक गया. आचार्य क्षितिमोहन सेन सबके आगे थे. उन्होंने मुझे बताया कि वह चिताभस्म के कलश के पास थोड़ी देर चुपचाप बैठा भी रहा.

कुछ और पहले की घटना याद आ रही है. उन दिनों शांतिनिकेतन में मैं नया ही आया था. गुरुदेव से अभी उतना धृष्ट नहीं हो पाया था. गुरुदेव उन दिनों सुबह अपने बगीचे में टहलने के लिए निकला करते थे. मैं एक दिन उनके साथ हो गया था. मेरे साथ एक और पुराने अध्यापक थे और सही बात तो यह है कि उन्होंने ही मुझे अपने साथ ले लिया था. गुरुदेव एक-एक फूल-पत्ते को ध्यान से देखते हुए अपने बगीचे में टहल रहे थे और उक्त अध्यापक महाशय से बातें करते जा रहे थे. मैं चुपचाप सुनता जा रहा था. गुरुदेव ने बातचीत के सिलमिले में एक बार कहा, 'अच्छा साहब, आश्रम के कौए क्या हो गये? उनकी आवाज़ सुनाई ही नहीं देती!' न तो मेरे साथी उन अध्यापक महाशय को यह खबर थी और न मुझे ही. बाद में मैंने लक्ष्य किया कि सचमुच कई दिनों से आश्रम में कौए नहीं दीख रहे हैं. मैंने तब तक कौओं को सर्वव्यापक पक्षी ही समझ रखा था. अचानक उस दिन मालूम हुआ कि ये भले आदमी भी कभी-कभी प्रवास पर चले जाते हैं या चले जाने को बाध्य होते हैं. एक लेखक ने कौओं की आधुनिक साहित्यिकों से उपमा दी है, क्योंकि इनका मोटो है– 'मिस् चीफ फार मिस् चीफ्स सेक' (शरारत के लिए ही शरारत), तो क्या कौओं का प्रवास किसी शरारत के उद्देश्य से ही था? प्रायः एक सप्ताह के बाद बहुत कौए दिखाई दिये.

एक लंगड़ी मैना फुदक रही थी. गुरुदेव ने कहा, 'देखते हो, यह यूथभ्रष्ट है. रोज फुदकती है, ठीक यहीं आकर. मुझे इसकी चाल में एक करुण भाव दिखाई देता है.'

एक दूसरी बार मैं सवेरे गुरुदेव के पास उपस्थित था. उस समय एक लंगड़ी मैना फुदक रही थी. गुरुदेव ने कहा, 'देखते हो, यह यूथभ्रष्ट है. रोज फुदकती है, ठीक यहीं आकर. मुझे इसकी चाल में एक करुण भाव दिखाई देता है.' गुरुदेव ने अगर कह न दिया होता तो मुझे उसका करुण भाव एकदम नहीं दिखता. मेरा अनुभव था कि मैना करुण भाव दिखानेवाला पक्षी है ही नहीं. वह दूसरों पर अनुकम्पा ही दिखाया करती है. तीन-चार वर्ष से मैं एक नये मकान में रहने लगा हूं. मकान के निर्माताओं

ने दीवारों में चारों ओर एक सूराख छोड़ रखा है. यह कोई आधुनिक वैज्ञानिक खतरे का समाधान होगा. सौ एक-एक मैना दम्पति नियमित भाव से प्रतिवर्ष यहां गृहस्थी जमाया करते हैं. तिनके और चिथड़ों का अम्बार लगा देते हैं. मानव गोबर के टुकड़े तक ले आना नहीं भूलते. हैरान होकर हम सूराखों में ईंटें भर देते हैं; परंतु वे खाली बची जगह का भी उपयोग कर लेते हैं. पति-पत्नी जब कोई एक तिनका लेकर सूराख में रखते हैं तो उनके भाव देखने लायक होते हैं. पत्नीदेवी का तो क्या कहना? एक तिनका ले आयीं तो फिर एक पैर पर खड़ी होकर जरा पंखों को फटकार दिया, चोंच को अपने ही पैरों से साफ कर लिया और नाना प्रकार की मधुर और विजयोद्घोषी वाणी में गाना शुरू कर दिया! हम लोगों की तो उन्हें कोई परवाह ही नहीं रहती. अचानक इस समय अगर पतिदेवता भी कोई कागज़ या गोबर का टुकड़ा लेकर उपस्थित हुए, तब तो क्या कहना? दोनों के नाच-गान और आनंद-नृत्य से सारा घर मुखरित हो उठता है. इसके बाद ही पत्नीदेवी जरा हम लोगों की ओर मुखातिब होकर लापरवाही भरी अदा से कुछ बोल देती हैं. पतिदेवता भी मानो मुस्कुराकर हमारी ओर देखते, कुछ रिमार्क करते और मुंह फेर लेते हैं. पक्षियों की भाषा तो मैं नहीं जानता; पर मेरा विश्वास है कि उनमें कुछ इस तरह की बातें हो जाया करती हैं.

पत्नी– ये लोग यहां कैसे आ गये, जी?

पति– ऊंह, बेचारे आ गये हैं, तो रह जाने दो. क्या कर लेंगे?

पत्नी– लेकिन फिर भी इनको इतना खयाल होना चाहिए कि यह हमारा प्राइवेट घर है.

पति– आदमी जो हैं, इतनी अकल कहां?

पत्नी– जाने भी दो.

पति– और क्या!

सो इस प्रकार की मैना कभी करुण हो सकती है, यह मेरा विश्वास नहीं था. गुरुदेव की बात पर मैंने ध्यान से देखा तो मालूम हुआ कि सचमुच ही उसके मुख पर एक करुण भाव है. शायद वह विधुर पति था, जो पिछली स्वयंवर-सभा के युद्ध में आहत और परास्त हो गया था; या विधवा पत्नी है, जो पिछले विडाल के आक्रमण के समय पति को खोकर, युद्ध में ईषत् चोट खाकर एकांत विहार कर रही है. हाय, क्यों इसकी ऐसी दशा है? शायद इसी मैना को लक्ष्य करके गुरुदेव ने बाद में एक कविता लिखी थी, जिसके कुछ अंश का सार इस प्रकार है :

‘उस मैना को क्या हो गया है, यही सोचता हूं. क्यों वह दल से अलग होकर

अकेली रहती है? पहले दिन देखा था सेमर के पेड़ के नीचे मेरे बगीचे में. जान पड़ा, जैसे एक पैर से लंगड़ा रही हो. इसके बाद उसे रोज़ सवेरे देखता हूं– संगीहीन होकर कीड़ों का शिकार करती फिरती है. चढ़ आती है बरामदे में. नाच-नाचकर चहलकदमी किया करती है, मुझसे जरा भी नहीं डरती. क्यों है ऐसी दशा इसकी? समाज के किस दंड पर उसे निर्वासन मिला है? दल के किस अविचार पर उसने मान किया है? कुछ ही दूर पर और मैनाएं बकझक कर रही हैं, घास पर उछल-कूद रही हैं; उड़ती-फिरती हैं, शिरीष वृक्ष की शाखाओं पर. इस बेचारी को ऐसा कुछ भी शौक नहीं है. इसके जीवन में कहां गांठ पड़ी है, यही सोच रहा हूं. सवेरे की धूप में मानो सहज मन से आहार चुगती हुई झड़े हुए पत्तों पर कूदती-फिरती है सारा दिन. किस के ऊपर इसका कुछ अभियोग है, यह बात बिल्कुल नहीं जान पड़ती. इसकी चाल में वैराग्य का गर्व भी तो नहीं है, दो आग-सी जलती आंखें भी तो नहीं दिखती.' इत्यादि.

जब मैं इस कविता को पढ़ता हूं तो उस मैना की करुण मूर्ति अत्यंत साफ होकर सामने आ जाती है. कैसे मैंने उसे देखकर भी नहीं देखा और किस प्रकार कवि की आंखें इस बेचारी के मर्मस्थल पर पहुंच गयीं, सोचता हूं तो हैरान हो रहता हूं. एक दिन वह मैना उड़ गयी. सायंकाल कवि ने उसे नहीं देखा. जब वह अकेले आया करती है उस डाल के कोने में; जब झींगुर अंधकार में झनकारता रहता है, जब हवा में बांस के पत्ते झरझराते रहते हैं, पेड़ों की फांक से पुकारा करता है नींद तोड़नेवाला संध्यातारा! कितना करुण है, उसका गायब हो जाना! ❑

पदावनति

यह घटना कवयित्री महादेवी वर्मा ने न सुनायी होती तो विश्वास करना आसान न होता. घटना तब की है जब देश नया-नया आज़ाद हुआ था. काफी विचार-विमर्श के बाद कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व ने ज्येष्ठ साहित्यकार-पत्रकार माखनलाल चतुर्वेदी को मध्यप्रदेश का पहला मुख्यमंत्री बनाने का निर्णय किया. लेकिन जब 'एक फूल की चाह' लिखने वाले माखनलाल चतुर्वेदी जी के पास यह प्रस्ताव पहुंचा तो उन्होंने इसे ठुकरा दिया. उनका कहना था, 'शिक्षक और साहित्यकार बनने के बाद मुख्यमंत्री बना तो यह मेरी पदावनति होगी.'
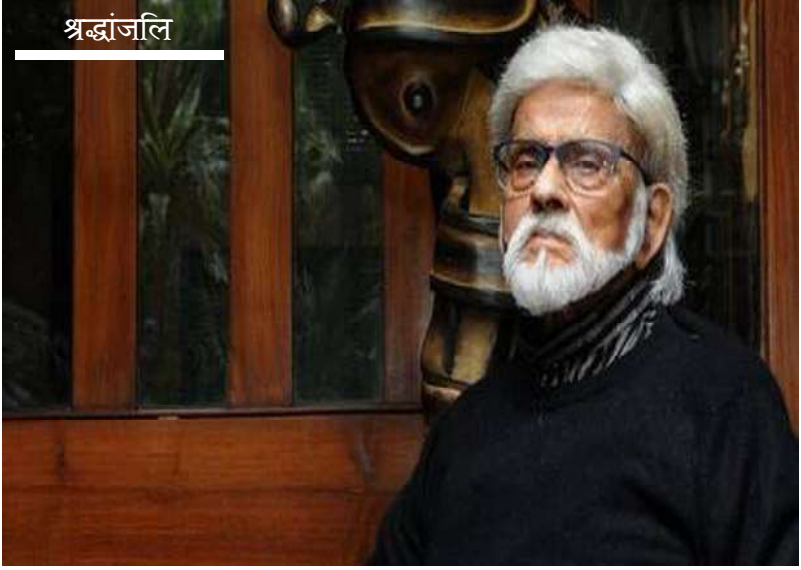
सौंदर्यबोध की जीवन दृष्टि वाले कलाकार

● डॉ. राजेश कुमार व्यास

सतीश गुजराल का बिछोह भारतीय कला की अपूरणीय क्षति है. वह ऐसे कलाकार थे जिन्होंने चित्रों की अनूठी काव्य भाषा रची. उनके चित्र, मूर्तियां, म्यूरल और इमारतों की सिरजी संरचनाओं में भारतीय कलाओं के सर्वांग को अनुभूत किया जा सकता है. माने संगीत, नृत्य, नाट्य, यहां तक की वास्तु कला तक का मेल लिये हैं उनकी तमाम कलाकृतियां. आकृतिमूलक होते हुए भी सांगीतिक आस्वाद में अर्थ की अनंत सम्भावनाओं को उनकी कला में तलाशा जा सकता है. एक तरह की किस्सागोई उनकी कलाकृतियों में है. सादृश्य पर भावों की प्रधानता ओर रंगों का समृद्ध संसार! नाटकीय प्रभाव में उनकी कलाकृतियों में अतीत का बोध परम्परा की बढ़त लिये है. कलाकृतियों की उनकी स्वैरकल्पनाएं (फंतासी) भावों का अनूठा ओज लिये हैं. कहें, भारतीय कला के सौंदर्यबोध की विरल जीवनदृष्टि है उनकी कलाकृतियां.

यह सही है, सतीश गुजराल के आरम्भिक चित्र गहरा अवसाद लिए

सतीश गुजराल 1955 में एक स्कॉलरशिप के तहत मैक्सिको की कला यात्रा पर गये. वहां उन्होंने म्यूरल की बारीकियों को सीखा परंतु उन्होंने पाया वहां के म्यूरल की बुनियाद में स्थापत्य का अभाव है. इसीलिए उन्होंने इस पर खासतौर से काम किया और जो म्यूरल बाद में उन्होंने सिरजे, उनमें स्थापत्य को जोड़ते महत्ती सृजन किया. ऐसा ही उनका एक विरल म्यूरल पंजाब विश्वविद्यालय के लुधियाना परिसर में लगा हुआ है. म्यूरल नहीं स्थापत्य, चित्र और वास्तु की सूक्ष्म सूझ लिये यह विरल कलाकृति है. स्थापत्य कला से उनके जुड़ाव को इसी से समझा जा सकता है कि नयी दिल्ली स्थित बेल्जियम के दूतावास का जो डिजाईन उन्होंने बनाया उसे 'इंटरनेशनल फोरम ऑफ आर्किटेक्ट्स' ने 20वीं शदी की दुनिया की सबसे बेहतरीन इमारतों' में शामिल किया.

बहरहाल, गुजराल के चित्र, भित्ति चित्र और मूर्ति शिल्प में परम्परा और जड़ों का अपनापा है तो आधुनिकता में समय संवेदना की अनूठी लय भी है. यह सही है, विभाजन आधारित उनकी प्रारम्भिक कलाकृतियां अतियथार्थवाद लिये है परंतु बाद की

रूपाकारों में विचार और संवेदना की उनकी कला दीठ को किसी इबादत की भांति बांचा जा सकता है. आदिवासी और लोक कलाओं का अपनापा उनकी कलाकृतियों में है तो स्थापत्य और वास्तु सौंदर्य की अनूठी लय भी है.

विभाजन की त्रासदियों पर आधारित है परंतु बाद की उनकी कलायात्रा पर जाएंगे तो यह भी पायेंगे आत्मान्वेषण में उन्होंने भारतीय कला दृष्टि को अपने तई चित्र भाषा के नये मुहावरे दिये. आरम्भिक कलाकृतियों में 'विभाजन शृंखला' की बनायी उनकी कलाकृतियों में 'मातम' सरीखे ऐसे चित्र हैं जिनमें उपद्रव, दंगों से उपजे शोक का अंतर्कहन है. ऐसे चित्रों में रंगों के संयोजन के साथ ही पृष्ठभूमि में अंतराल का खालीपन और स्पेस का अद्‌भुत विभाजन है. चित्र में भले आकृतियों का तनाव प्रत्यक्ष है परंतु रंग-रेखाओं का वह बहुत कुछ वह अनकहा भी है जो विभाजन की त्रासदी को स्वयमेव व्यंजित करता है. 1947 से 1952 के दौरान के अधिकतर उनके चित्र ऐसे ही है. बाद में उनके चित्रों में एक बड़ा बदलाव आया. यह ऐसा था जिसमें आकृतियों की विलीनता में उन्होंने भारतीय कला दृष्टि को रंग-रेखाओं के अपूर्व संयोजन में जैसे पुनराविष्कृत किया. ऐसी उनकी कलाकृतियों में पतंग उड़ाते लोगों, शक्ति एवं गणेश, घोड़ों और संगीत, वाद्य की अनुभूतियों के रूपाकार भाव संवेदनाओं का अनूठा राग लिये हैं.

कलाकृतियों में आकृतिमूलकता होते हुए भी दृश्य की अनंत सम्भावनाओं में नाटकीय प्रभाव में कथाओं का जैसे कोलाज रचा गया है. मसलन 'गणेश और शक्ति' शृंखला के उनके चित्र ही लें. इनमें पौराणिक गणेश की आधुनिक रूप सर्जना है. घोड़े पर सवार गणेश, नृत्यरत गणेश और खास मुद्रा में अपने होने को अंवेरते गणेश के बहाने गुजराल ने इस शृंखला में लोक का आलोक जैसे रचा है.

रूपाकारों में विचार और संवेदना की उनकी कला दीठ को किसी इबादत की भांति बांचा जा सकता है. आदिवासी और लोक कलाओं का अपनापा उनकी कलाकृतियों में है तो स्थापत्य और वास्तु सौंदर्य की अनूठी लय भी है. उनके वह मूर्तिशिल्प भी अनूठे हैं जिन्हें जली लकड़ी के ज़रिये तैयार किया गया है. आदिवासी और लोक जीवन से जुड़ी भावभूमि के ऐसी उनकी कलाकृतियों के भीतर के स्पेश में अंगारे जैसे दहकते हुए जीवनानुभूतियों के अनूठे संदर्भ लिये हैं. मुझे लगता है, जली हुई लकड़ी और धातु, ब्राश, कांच, सिरेमिक्स आदि में गुजराल ने जो कार्य किया है, वह परम्परा की विरल आधुनिकी है. कभी उन्होंने पेपर कोलाज के अंतर्गत कागज़ को फोल्ड कर किया उनका इंस्टालेशन भी बेहद चर्चित रहा है. जली लकड़ी और कौड़ियों का उपयोग कर भी उन्होंने कला को नये संदर्भ दिये. उनकी तमाम कलाकृतियां चाहे वह चित्र हों, मूर्तिशिल्प हों, म्यूरल या फिर इमारतों की डिजायन-एक काव्यात्मक अंर्तदृष्टि वहां है. चटकीले रंगों का सुंदर संयोजन वहां है तो इतिहास, पुराण और भारतीय संस्कृति के अनूठे संदर्भ वहां तलाशे जा सकते हैं. इसीलिए कहें उनकी कलाकृतियां रंगों के संयोजन, आकृतियों की मुद्राओं की विविधता में सघन उत्सुकता से उपजा आत्मान्वेषण है.

बहरहाल, सतीश गुजराल को भारतीय कला की वह आखिरी कड़ी कहा जा सकता है जिन्होंने परम्परा में आधुनिकता को बेहद संतुलित संयोजन से अपने तई साधा था. भले ही उन्होंने जो सिरजा उसमें बहुतेरा आकृतिमूलक ही था परंतु वहां लोक, आदिवासी कला के साथ ही अजंता, लघु चित्रों की भारतीय कला परम्परा की बढ़त को भी गहरे से अनुभूत किया जा सकता है. मुझे लगता है, कलाओं का सर्वांग रचते अपनी कलाकृतियों में मूर्ति, स्थापत्य और वास्तुकला के साथ ही संगीत, नृत्य, नाट्य की अनुभूतियों का लोक रचने वाले वह भारतीय दृष्टि के विरल कलाकार थे. उनके मूर्तिशिल्प, चित्र, म्यूरल या फिर इमारतों की डिजाइन आदि सभी में भारतीय कला का अनूठा सौंदर्यबोध है. उनका नहीं होना भारतीय कला में एक युग का अवसान है. ❑

सांकल सपने और सवाल

● गंगाशरण सिंह

सामाजिक संरचना की सांकलों का इतिहास बहुत पुराना है. मनु स्मृति के एक विवादास्पद श्लोक में स्त्रियों की स्वतंत्रता के विषय में जो सलाह दी गयी थी वह आज भले ही पूरी तरह अप्रासंगिक हो चली हो किंतु उसका प्रभाव मानव समाज के तमाम तबकों में अब भी मौजूद है. हां, ये अवश्य माना जा सकता है कि पिछले डेढ़ दशकों में ये सांकलें ढीली अवश्य पड़ी हैं. आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्री सशक्तिकरण का एक अत्यंत आवश्यक हथियार है. हमारी सामाजिक संरचना इसमें भी बाधा पहुंचाती है. विवाह के बाद बहुत सी स्त्रियों को नौकरी और व्यवसाय से दूरी बनाकर घर, परिवार और गृहस्थी को पूरा वक्त देना पड़ता है. ऐसी स्थिति में आर्थिक रूप से उसे पुनः पराश्रित होना पड़ता है.

'सांकल, सपने और सवाल' प्रतिष्ठित रचनाकार, विचारक और स्त्रियों की सशक्त पक्षधर सुधा अरोड़ा के चुनिन्दा आलेखों का महत्वपूर्ण संचयन है.

'कम से एक दरवाजा' शीर्षक आलेख में पिछले दिनों घटी आत्महत्या की कुछ
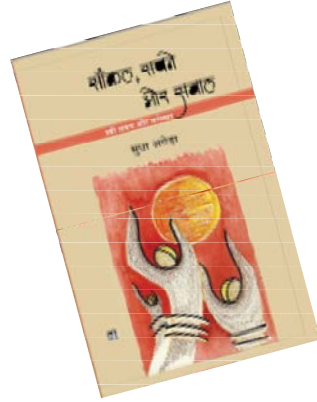
विक्षुब्ध करने वाली घटनाओं की विवेचना करते हुए सुधा अरोड़ा सिद्ध करती हैं कि बहुत बार ऐसा होता है कि लोग अवसाद के कठिन क्षणों से जूझ रहे होते हैं किंतु उनके चेहरे और आचरण में यह हरगिज़ नज़र नहीं आता. अवसाद के इन चिह्नों को जब तक वे या उनके परिजन पहचानें तब तक बहुत विलम्ब हो चुका होता है.

इस किताब के सात खंडों में समाहित कुल छब्बीस आलेख विविध विषयों की सार्थक पड़ताल करते हैं. सरल, सहज भाषा में लिखे गये ये आलेख रोचक एवं पठनीय तो हैं ही, पाठक को कहीं गहरे तक उद्वेलित भी करते हैं.

प्रेम में निरंतर आती प्रतिहिंसा की भावना

और एसिड अटैक की बढ़ती घटनाएं, समलैंगिक एवं थर्ड जेंडर: सहानुभूति के साथ स्वीकृति की ज़रूरत, भारतीय समाज में स्त्री की देह मुक्ति के सही मायने, धर्म के शिकंजे में स्त्रियों को फंसाये रखने की परम्परा, स्त्री शक्ति की भूमिका, स्त्री हिंसा के ढेरों दृश्य-अदृश्य कोने : जहां हिंसा के निशान प्रत्यक्ष नहीं दिखते, स्त्री की दैहिक शुचिता और विवाह की अवधारणा, स्त्री और संपत्ति अधिकार, स्त्री विमर्श के नाम पर साहित्य में फैला प्रदूषण, लेखक और कलाकार के मुखौटे ओढ़े लम्पट लोग, अंगारों भरी डगर पर नंगे पांव चलने के लिए बाध्य कलाकारों की पत्नियां, महिलाओं के जीवन में धर्म का खलल और कुरान की नारीवादी व्याख्या, जैसे अत्यंत गम्भीर, समसामयिक एवं ज्वलंत सामाजिक विषयों पर केंद्रित ये आलेख इनमें वर्णित विसंगतियों की सटीक विवेचना के साथ ही निराकरण की तार्किक सम्भावनाओं एवं रास्तों के बारे में बताते हैं.

सुधा अरोड़ा कथनी और करनी के स्तर पर दोहरे चरित्र वाले राजेंद्र यादव जैसे सम्पादकों को भी कठघरे में लेने से नहीं चूकतीं और उनके छद्म महिला विमर्श पर शालीन किंतु तीक्ष्ण प्रहार करती हैं. इस विषय पर लिखते हुए उनकी लेखिका पत्नी मन्नू भंडारी के प्रति राजेंद्र यादव के ग़लत रवैये के साथ ही प्रेमचंद द्वारा स्थापित 'हंस' जैसे प्रतिष्ठित नाम के साथ किये जा रहे खिलवाड़ पर भी आपत्ति दर्ज करती हैं.

सुधा अरोड़ा पारिवारिक विघटन के विश्वव्यापी चिंता जनक परिदृश्य के बावजूद आशान्वित हैं कि भारत में बड़े महानगरों में चाहे जैसे तनाव हों किंतु समाधान की सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता.

किताब के अंतिम अध्याय 'औरत की दुनिया बनाम दुनिया की औरत' में शामिल लेख 'तीन इंच के स्वर्ण फूल' चीन की एक यातनादायक प्रथा का मार्मिक वर्णन है. हम सुनते आए थे कि चीनी देश की औरतों के पाव भी उनकी आंखों की ही तरह छोटे होते हैं. दरअसल पांवों का यह छोटापन प्राकृतिक नहीं था. कुछ अमानवीय तरीकों से पांव को बढ़ने से रोक दिया जाता था.

होगा कोई तर्क चीन वालों के पास अपनी महिलाओं के पांव छोटे रखने का, पर इसका सीधा-सा अर्थ यह है कि छोटे पैरों वाली औरतें जीवन की राह पर बड़े डग न भर सकें. सुंदरता की महिलाओं की अपनी परिभाषा भी हो सकती है, और उसका सम्मान किया जाना चाहिए, ऐसी कोई अवधारणा उस समाज में नहीं थी. पांव को बढ़ने से रोकने का सीधा-सा मतलब सांकल को मज़बूत करना है– यह सांकल, टूटनी चाहिए, तब सपने पल पायेंगे, तब सवालों के जवाब मिल सकेंगे.

❑

कोने से कमरे तक

● सुधा अरोड़ा

द नहीं कितने बरस हुए, जब वर्जीनिया वुल्फ की किताब 'अ रूम ऑफ वन्स ओन' पढ़ी थी. इससे पहले लगता था– स्त्रियों का तो पूरा घर ही होता है बल्कि घर होता ही स्त्री से है. घर का पर्याय उस घर की गृहिणी है, फिर घर में एक कमरा हो या दस कमरे, स्त्री के ही होंगे. पर नहीं, यह सच नहीं था. समझ में आया कि पुरुष जितने अधिकार और आधिपत्य से 'मेरा कमरा, मेरा साम्राज्य' की बात कर सकता है, स्त्री नहीं कर सकती. घर नामक एक संस्थान की मैनेजर है गृहिणी. वहां रहनेवाले सभी सदस्यों का रख-रखाव, स्वास्थ्य और दिनचर्या, सेहतमंद खान-पान और अच्छी नींद, सब उसके जिम्मे हैं. ..और उसका अपना आप? उसके लिए तो कमरा क्या, एक कोना भी नहीं जहां वह अपने बारे में फ़ुरसत से, इत्मीनान से कुछ सोचने की मोहलत पा सके. उसके अपने होने, जीने और खुशहाल रहने का नम्बर उस घर में आखिरी पायदान पर है. आखिरी पायदान पर यह ओहदा खुद उसने अपने लिए चुना, इसलिए अपराधी भी कोई और नहीं, वह खुद है.

स्मृतियों में लौटूं तो अपनी नानी-दादी याद आती हैं. बेटियों के घर रहने से माता-पिता को 'नरक' का भागी होना पड़ता है, इसलिए नानी हमेशा अपने बेटे के पास ही रहती थीं–पोती और पोतों को संभालती हुई. वही उनका स्थायी ठिकाना था. मामी भी उन्हें बहुत इज़्ज़त-मान देतीं. नानी को हम भाबी जी कहते थे. अपनी दोनों बेटियों-यानी मेरी मां और मौसी, में से जिसके बच्चे बीमार हो जाते, वे अपनी एक जोड़ी पोशाक, जपुजी साहब का गुटका, मनकों वाली जाप की माला और तनियों वाली गुत्थी में अपनी जमा-पूंजी के कुछ रुपए पैसों के साथ बनफशां और अजवायन के टोटके लिए तीमारदारी के लिए हाज़िर हो जातीं. उनका छोटा-सा साम्राज्य तो उस एक झोले में ही सिमटा होता. नानी के हाथों के दुलार और जी-जान से की गयी सेवा टहल से बीमार नातिनें सेहतमंद हो जातीं और वे वापस अपने ठिये पर लौट जातीं. जाते-

जाते वे दिन के हिसाब से उनकी हथेली में अपनी रोटी-दाल के पैसे थमाना नहीं भूलतीं-'रक्ख लओ नी कुड़ियों. धी दे घर रोट्टी खाण दा हिसाब ओस दाता नूं देणा ए.' अंतिम सांस तक भाबी जी की दिनचर्या ऐसी ही रही. उनका जाना बहुत अखरा. जैसे हमारा डॉक्टर, हमारा खैरख्वाह चला गया हमें छोड़कर. कई दिनों उनका जाना याद कर करके मैं रोती रही. वे मेरी बेहद प्रिय शख्सियत थीं. गजब की स्नेहिल. बच्चों के साथ रल-मिल कर बच्चा बन जाने वालीं. हमें गोद में बिठाकर जपुजी साहब का पाठ सुनाने वालीं. अपनी आंखों से लाड़ का दरिया उंड़ेलने वालीं. अपनी हथेलियों की मुलायम थपकियों से हमें सुनहरी नींद में सुला देने वालीं.

दादी की किस्म अलग थी. पिता उनके इकलौते लाड़ले बेटे थे. घर में दादी का रुतबा था. घर के सारे क्रियाकलाप उनके इंगित पर परिचालित होते थे. एक-डेढ़ कमरे से हैसियत बढ़ते बढ़ते, तीन तल्ले के मकान तक बढ़ गयी पर मां की ओर वह रुतबा स्थानांतरित नहीं हुआ. बेशक मां उस ज़माने की बेहद पढ़ी लिखी लड़की थी. प्रभाकर पास कर साहित्य रत्न में दाखिला लेकर किताबों में छिपाकर अपनी कविताएं लिखती हुई. पर मां की औकात वही रही जो डेढ़ कमरे के वक्त थी. इकलौते बेटे और उनकी लाड़ली मां को बड़ा परिवार चाहिए था सो हर डेढ़-दो साल के अंतराल में एक-एक कर सात बच्चे मां ने पैदा कर लिए और अपनी सारी ज़िंदगी उन बच्चों को काबिल, सेहतमंद और संस्कारी इंसान बनाने में गर्क कर दी. अपने होने तक उनका सरोकार उनके बच्चे ही रहे. ज़िंदगी ने उन्हें अपनी ओर ताकने और अपने बारे में सोचने की फुरसत ही नहीं दी.

पढ़ाई के दौरान ही मैंने जब लिखना और छपना शुरू किया तो मां को जैसे नयी ज़िंदगी मिल गयी. वे जो अपनी कविताएं छिपाकर रखती थीं, मुझे मेरे नाम से छपते देख मुतमइन होती रहीं. उनकी गर्वीली मुस्कान मैं पहचान रही थी. मुझमें उन्होंने अपना विस्तार देखा. उनकी सारी रचनात्मक आकांक्षाएं मुझ तक स्थानांतरित हो गयीं. उनकी ज़ेहनियत ने सिर उठाया. हर मां अपने बच्चों में उन कोंपलों को अंकुरित देखना चाहती है जो वह अपनी शाखाओं पर अंकुरित नहीं कर पाती और उस न कर पाने के बोझ तले अपनी कराह को भी अपने से छिपाती रहती है. जिन्होंने किसी ज़ोर-जुल्म के लिए कभी अपनी ज़बान नहीं खोली थी, मेरी पढ़ाई के लिए वे दादा-दादी के सामने मेरे ढाल-कवच की तरह खड़ी हो गयीं. घर गृहस्थी की उनकी बेशुमार ज़िम्मेदारियों में घर के बड़े-बुज़ुर्गों के साथ मेरे लिए उतनी लड़ाई जीत लेना ही उनके लिए

काफी था. न सिर्फ मेरी शादी के तयशुदा रिश्ते को उन्होंने सिरे से अपदस्थ किया, मुझे उस बेमेल शादी से बचा लिया बल्कि उसका सारा दारोमदार भी अपने सिर ले लिया. मेरे हाथ में कलम कागज़ देखते ही वे इसी कोशिश में रहतीं कि घर के कामकाज का बोझ वे अकेले उठा लें. न मुझे एक गिलास पानी लाने को कहतीं, न किसी को मेरे पास फटकने देतीं. उस बड़े से घर का वह छोटा-सा कोना मेरा, नितांत मेरा था जिसमें पढ़ने की मेज़ थी. मेरा काम पढ़ना और सिर्फ पढ़ना था. हर बार जब मैं पूरे कॉलेज में या विश्वविद्यालय में टॉप करती, मां गर्व की चमक से भर जातीं.

लिखने-पढ़ने की वैसी सहूलियतें और अपने लिए वैसा आरक्षित कोना उसके बाद मुझे बहुत सालों तक नहीं मिला. मां के घर में सबकुछ इतनी सहजता से मिला था कि उसकी अहमियत का अहसास तक नहीं हुआ. मुझे उन्होंने शिक्षा के साथ-साथ बेचैनी का कीड़ा तो सौंप दिया था जो मुझसे लिखवाता था पर आर्थिक आत्मनिर्भरता का पाठ नहीं पढ़ा पायी. न मेरी ही लेखकीय जुनून से अंटी पड़ी बुद्धि में वह चिनगारी कौंधी. शिक्षा और शिक्षा की चमक हमें आगे तो बढ़ाती है, हमारी राहों को उजला भी करती है पर उन संस्कारों का क्या करें जो पैरों में बेड़ियां नहीं, पायल की तरह झनकारते हुए हम साथ ले आते हैं. गोया वे संस्कार एक तमगा, एक शील्ड हैं गर्व करने के लिए. सो संस्कारों से लदे-फंद मानस का, शिक्षा और गले में लटके स्वर्णपदक भी क्या परिष्कार करते.

शादी के बाद लेखन का कम होते-होते बंद हो जाना मुझसे ज़्यादा उनके लिए त्रासद था. शायद हर स्त्री के लिए शादी के बाद का यह बदलाव और अपनी 'स्पेस' का छिन जाना जल्दी से पहचान में नहीं आता. वह एक लड़की से औरत और औरत से 'मां' के चमकदार ओहदे से इतनी आक्रांत रहती है कि अपना आप उसके हाथ से छिटककर कहीं दूर जा गिरता है. इस गिरने की आहट भी नहीं होती. अर्थसत्ता और पारिवारिक ज़िम्मेदारियों के सामने सबकुछ बड़ी सहजता से होम होता रहता है और नये-नये परिवार की नयी ज़िम्मेदारियों के बीच वह उन्हें देख भी नहीं पाती. वह जो कोना मां ने संजोया था, अपने कहे जाने वाले तथाकथित 'घर' में एक बार खोया तो ऐसा कि उसे ढूंढ़ने

> अपने पति और बच्चों को आगे बढ़ते, फलते-फूलते देखकर वह एक लम्बे अरसे तक अपने तईं परम तृप्त, अघाई रहती है, जब तक उसके सींचे हुए पौधे अपनी जड़ों में पानी डालने के लिए उसके मोहताज नहीं रह जाते.

में तेरह साल लग गये.

अक्सर औरतों के साथ यह होता है और उन्हें इसकी पहचान भी नहीं होती. जब पहचान हुई तो उसे अपनी नोटबुक में इस तरह बयान किया– एक पढ़ी-लिखी हिंदुस्तानी औरत की त्रासदी ही यह है कि पूरी तरह घर, पति और बच्चों को समर्पित, अपनी निजी ज़िंदगी का एक महत्वपूर्ण और सुनहरा हिस्सा वे अपना घर सुचारू रूप से चलाने में, अपने पति की रुचि और पसंद के अनुसार अपने आपको ढालने में, अपने बच्चों की पढ़ाई और उनके भविष्य की चिंता में होम कर देती है. अपने पति और बच्चों को आगे बढ़ते, फलते-फूलते देखकर वह एक लम्बे अरसे तक अपने तई परम तृप्त, अघाई रहती है, जब तक उसके सींचे हुए पौधे अपनी जड़ों में पानी डालने के लिए उसके मोहताज नहीं रह जाते. तब जाकर अपने आप को ढूंढ़ने का उसका अभियान शुरू होता है पर उसका अपना आप उसके ढूंढ़े नहीं मिलता.

चालीस-पैंतालीस की उम्र के बाद यह औरत अचानक पाती है कि वह एक फालतू सामान की तरह घर में पड़ी है. बच्चे अपने पैरों पर खड़े हैं और मां उनके लिए बहुत बड़ी ज़रूरत नहीं रह गयी है. पति के लिए वह एक 'आदत' बन चुकी है. अब या तो वह पुराने ज़माने की औरत की तरह अपने तथाकथित 'त्याग' को लेकर आत्ममुग्ध स्थिति में गद्गद भाव से प्रतिष्ठित हो ले या अपने बीते दिनों की जुगाली कर आंसू बहाये. होता यह है कि अपने घरेलू सिंहासन के आकस्मिक स्थानांतरण से बौखलाकर वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है और अपने अस्तित्व की सार्थकता की तलाश में छटपटाती है. इसे वह 'मेनोपॉज' या 'हॉर्मोन्स' के 'इम्बैलेन्स' का नाम देकर अपने को बहलाने में एक हद तक कामयाब भी हो जाती है. ज़ाहिर है, अपनी 'स्पेस', अपना कमरा और कमरे का वह कोना माइनस हो चुका होता है.

शायद इसीलिए जब वह कलम कागज़ मेरी ज़िंदगी से परे हो गये तो मुझसे ज़्यादा तकलीफ मां को हुई. हर उस औरत को होती है जो अपने बच्चों को अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए देखना चाहती है और उसके सपनों के बूते ज़िंदा रहती है. अपनी बेटी को अपनी ही तरह, फिर से एक औरत होने के संजाल में भरभराकर ढहते देखना उसके लिए बहुत मारक होता है.

खैर, यह स्थिति लम्बी नहीं खिंची. लिखना शुरू हुआ और वह कोना जो घर में बाहर से ज़्यादा मन के भीतर था, रात को सबके सो जाने के बाद जगता था और घर के सदस्यों की चैन की नींद में खलल डाले बिना, अपनी बेचैनी को काग़ज़ पर उंडे़लता था. भारत में मध्यवर्ग

की अधिकांश महिला रचनाकारों का लेखन उस पसरती रात को ही आकार लेता है जब वह घर-गृहस्थी के सारे काम निबटा चुकती है, बच्चे और बड़े नींद के आगोश में चले जाते हैं और वह किसी की जवाबदेह नहीं होती. वह समय उसका अपना होता है. रात के इसी प्रहर में आलोकित होता है वह कोना जिसकी उसे हमेशा तलाश रहती है.

मेरा वह कोना भी लम्बी तलाश के बाद मुझे मिल ही गया और इसी कोने में मेरा 'मैं' ज़िंदा रहा. अब यह मेरी आदत से ज़्यादा मेरा जुनून बन गया है और मुझे यह कोना चाहिए ही. अब वह रात में ही नहीं, दिन-दोपहर-शाम, गो कि चौबीस घंटे मेरे साथ होता है. खोई हुई चीज़ें जब मिल जाती हैं तो बड़ी बेशकीमती होती हैं. उन्हें हम ताउम्र संभाले रखना चाहते हैं.

नहीं, इसे पढ़कर परेशान न हों. बदल रहा है यह माहौल. मेरी दोनों बेटियों ने अपने बेशकीमती 'स्पेस' को शादी के बाद भी बरकरार रखा. आज की लड़की चाहे वह मध्यवर्ग की हो या निम्न वर्ग की, रात के ढलते प्रहर का इंतज़ार नहीं करती. वह अपने को ढूंढ़ना, अपने को पाना सीख रही है. उसकी प्राथमिकताएं बदल रही हैं. हमने उन्हें यह पाठ बेशक न पढ़ाया हो पर हमारी पीढ़ी की कुलबुलाहट और अकुलाहट देख देखकर उसने खुद इस रोशनी को पहचान लिया है.

आज की पीढ़ी की लड़की, अपने जागने के लिए, सबके सोने का इंतज़ार नहीं करती. यह कितनी बड़ी सीख है जो उसने हमारी सीख के बगैर भी अपने लिए हासिल की है. उसके अपने कोने को छीनने का अब किसी को हक नहीं. ❑

सार्त्र की कुर्सी

मेरी कविताओं का फ्रांसीसी में अनुवाद छापा तो पेरिस में उसका लोकार्पण हुआ था. प्रकाशक ने मुझे जितनी रायल्टी दी वह मुझे जीवन भर में मिली रायल्टी से भी ज़्यादा है. मैं उस कैफे में गया जहां सार्त्र बैठा करते थे. वहां टिकट कटा कर उनकी कुर्सी पर बैठने वालों की लाइन लगी हुई थी. जब रेस्तरां मालिक को मेरे बारे में पता चला तो वह दौड़ता हुआ आया और मुझे कतार से हटा कर सार्त्र की कुर्सी पर बिठाया. वह मेरे लिए अपार खुशी का क्षण था.

– केदारनाथ सिंह

दुनियाभर में उपयोग की जानेवाली संपूर्ण वैज्ञानिक किट

किट : रु 1000 – आरोग्यवर्धक टॉनिक खुराक + किट

किट : रु 300 – आप ही अपने उद्धारक भाग 1,2,3 + 20 यूरिन टेस्ट पट्टी + टॉनिक भस्म

- 100 ऐकड़ा वीसा जाति ने 1500 किट का ऑर्डर दिया।
- एड्स के उपचार में भी सहायक है।
- शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ाती है।

जब शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है तब रोग मिटता है। रोग तो शरीर ही मिटाता है, दवा तो केवल रोग को मिटाने में आनेवाली बाधाओं को दूर करती है।

रोग : थैलेसीमिया, एड्स, टीबी, कैंसर, पथरी, पेशाब संबंधी रोग, हृदय संबंधी रोग आदि।

Sarla Pandit, Dena bank, Canal Road branch, Rajkot

A/c no. 019610002161

IFSC Code : BKDNO310196

पैसा भेजने के बाद अपना परिचय एवं पता भेजें या एसएमएस करें।

थैलेसेमीया, एड्स, टीबी, कैंसर के रोगियों को 1000 रुपये की किट मुफ्त बाँटी जाएगी।

अब तक स्वबचत का 2 करोड़ रुपया राष्ट्रीय कार्य हेतु प्रदान किया गया है

तन मन धन से राष्ट्रीय आरोग्य के लिए समर्पित

डॉ. हर्षद पंडित

M.V.Sc (Medicine) ● मोबाईल : 9428299637

''ॐ'' 4, करणपरा, राजकोट - 360 001 (गुजरात)

Email : drharshadpandit@gmail.com

www.rejuvenatewithoutmedicine.com

शब्दों का सफ़र

मसख़रे की मसख़री सिर माथे

● अजित वडनेरकर

आम तौर पर हंसोड़ और परिहासप्रिय व्यक्ति को समाज में पसंद किया जाता है. ये लोग चूंकि सामान्यत: हर बात में हंसी-ठट्ठे का मौका तलाश लेते हैं इसलिए ऐसे लोगों को अक्सर विदूषक या मसखरा की उपाधि भी मिल जाती है. हालांकि ये दोनों ही शब्द कलाजगत से सम्बंधित हैं और नाटक आदि में ठिठोलीबाज़ी और अनोखी वेषभूषा, बातचीत, हावभाव, मुखमुद्रा आदि से परिहास उत्पन्न कर दर्शकों के उल्लास में वृद्धि करनेवाले कलाकार को ही मसखरा या विदूषक कहा जाता है. हिंदी में मसखरा शब्द अरबी के **मस्खर:** से बरास्ता फ़ारसी-उर्दू होते हुए आया, तो अरबी में भी **मस्खर:** शब्द का निर्माण मूल अरबी लफ़्ज़ मस्ख से हुआ जिसका मतलब है– एक किस्म की खराबी जिसमें अच्छी-भली सूरत का विकृत हो जाना. मगर यदि इससे बने मसखरा शब्द की शख्सियत पर जाएं तो अजीबोगरीब अंदाज़ में रंगों से पुते चेहरे और निराले नैन-नक्शों वाले विदूषक की याद आ जाती है. हिंदी के मसखरा शब्द का अरबी रूप है मस्खर: जिसके मायने हैं हंसोड़, हंसी-ठट्ठे वाला, भांड, विदूषक या नक्काल वगैरह. ज़ाहिर है, लोगों को हंसाने के लिए मसखरा अपनी अच्छी-भली शक्ल को बिगाड़ लेता है. मस्ख का यही मतलब **मसखरा** शब्द को नया अर्थ देता है.

इसी नये अर्थ के साथ अरब के सौदागरों के साथ यह शब्द स्पेन और इटली में **मैस्खेरा** बन कर पहुंचता है जहां इसका मतलब हो जाता है मुखौटा या नकाब. अरब से ही यह यूरोप की दीगर ज़बानों में भी शामिल हो गया और इटालियन में **मैस्ख** और लैटिन में **मैस्का** बना. फ्रेंच में **मास्करैर** कहलाया जहां इसका मतलब था– चेहरे को काला रंगना. अंग्रेज़ी में इसका रूप हुआ मास्क यानी मुखौटा. मध्यकाल में मसखरा शब्द ने मेकअप और कॉस्मैटिक की दुनिया में प्रवेश पाया और इसका रूपांतर **मस्कारा** (mascara) में हो गया जिसके तरहत मेकअप करते समय महिलाएं काले रंग के आईलाइनर से अपनी भौंहों और पलकों को नुकीला और गहरा बनाती हैं. आवारगी, बेचारगी, दीवानगी की तर्ज़ पर मस्खर: में **अगी** प्रत्यय लगने से अरब, फ़ारसी में बनता है मस्खरगी यानी मसख़रापन या ठिठोलेबाज़ी. मगर इसके विपरीत

इसमें **शुदा** प्रत्यय लगने से बन जाता है विकृत, रूपांतरित आदि.

हालांकि सेमिटिक भाषा परिवार की होने के बावजूद अरबी ज़बान में **मस्ख** की मौजूदगी मूलभूत नहीं जान पड़ती. संस्कृत में एक धातु है **मस्** जिसका मतलब है रूप बदलना, पैमाइश करना. इसके अतिरिक्त इसमें ऊपर का या ऊपरी जैसे भाव भी हैं. याद रहे, मस्तक शरीर का सबसे ऊपरी हिस्सा या अंग है. इस ऊपरी अंग पर ही मुखौटा भी लगाया जाता है जो मसखरे की खास पहचान है. इससे बना है **मसनम्** जिसका मतलब है एक प्रकार की बूटी (चेहरे पर लेपन के लिए) हिंदी-संस्कृत के मस्तक या मस्तकः या मस्तम् (सिर, खोपड़ी) शब्द के मूल में भी यही **मस्** धातु है. गौर करें कि मस्ख से बने मास्क को मस्तक पर ही लगाया जाता है. मस्तिष्क यानी दिमाग का मस्तक से क्या रिश्ता है, बताने की ज़रूरत नहीं. ज़ाहिर है, इसके मूल में भी यही धातु है. माथा, मत्था जैसे देशज शब्द भी इसी की उपज हैं. **मस्** धातु में निहित रूप बदलने के अर्थ से ही खुलता है एक और शब्द का जन्मसूत्र.

संस्कृत में **सियाही** के लिए **मसि** शब्द प्रचलित है. इसका हिंदी में भी इस्तेमाल होता है. कबीर का मसि-कागद छुए बिना विशाल साहित्य रच देना सबको चमत्कृत करता है. यह मसि भी मस् की देन है. गौर करें, मसिलेखन किसी भी सतह पर ही होता है. मसि अपने-आपमें एक रंग है और प्रकारांतर से लेपन ही. चेहरे की विविध रंगों से रंगना बहुरूपियों का शगल होता है. चेहरा बिगाड़ने के लिए सियाही भी पोती जाती है. जलपोत का सबसे ऊंचे सिरे को मस्तूल कहते हैं जिस पर ध्वज लहराता है और जो हवा बहने की दिशा भी बताता है. **मस्तूल** (mastool) अरबी का शब्द है. अंग्रेज़ी में इसे मास्ट कहते हैं. अखबारों के ऊपरी सिरे पर जिस पट्टी में अखबार का नाम लिखा होता है, उसे भी मास्ट हैड कहते हैं. सड़कों के किनारे बिज़ली के खम्भे अब **हाई मास्ट** (high mast) में बदल गये हैं. **मास्ट** शब्द भी भारोपीय मूल का है और इसकी रिश्तेदारी **मस्** धातु में निहित ऊपरी शब्द से है. भाषाविज्ञानियों ने प्रोटो इंडो-यूरोपीय भाषा परिवार में एक धातु **mazdos** खोजी है जिसका अर्थ है ऊंचा डंडा. एटिमऑनलाइन के मुताबिक पोस्ट जर्मनिक में इससे **mastaz** शब्द बनता है जिसका अंग्रेज़ी रूपांतर **mast** हुआ. पंजाबी में मस्खरा के मशकरा और मशकरी रूप हैं. **(शब्दों का सफ़र, राजकमल प्रकाशन, से साभार)**

किताबें

कुछ सोच रहा हूं
प्रमोद शाह नफीस

विकास प्रकाशन, जुबली नागरी भंडार, स्टेशन रोड, बीकानेर 334001 मूल्य-600

यह पुस्तक लेखक द्वारा विगत 25 वर्षों में लिखे व पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए लेखों का संग्रह है. विज्ञान, दर्शन, राजनीति, सामाजिक व धार्मिक क्षेत्रों में आये अद्भुत परिवर्तन को व्यक्त करते ये लेख, हमें चिंतन-मनन की एक पौष्टिक खुराक देते हैं. पुस्तक के माध्यम से कई महत्वपूर्ण घटनाओं का परिचय और लेखक के नजरिए से उन्हें देखने-समझने का अवसर भी प्राप्त होता है.

राजा जंगल और काला चांद
तरुण भटनागर

आधार प्रकाशन, एससीएफ 267, सेक्टर 16, पंचकूला 134113. मूल्य- 250

आदिवासियों के जीवन से परिचित कराता 312 पृष्ठों का यह उपन्यास जंगल में चल रही लूट और शोषण की कई परतों को उधेड़ता है. तेरहवीं सदी के वारंगल के राजा से लेकर आजाद भारत में बस्तर के राजा और उसके बाद राजा के नाम पर रचे गए धोखे और झूठ की एक लम्बी कहानी इस उपन्यास में है. विभिन्न चरित्रों के माध्यम से यहां आदिवासियों का जीवन वर्णित है.
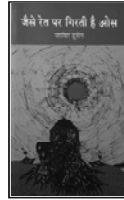
जैसे रेत पर गिरती है ओस
जाबिर हुसैन

दोआबा प्रकाशन, 247-एमआईजी, लोहिया नगर पटना 800020 मूल्य- 251

इस संग्रह की अधिकांश कविताएं समकालीन राजनीति, समाज, मानव व्यवहार संबंधी प्रकृति और विचारधाराओं से टकराती नजर आती हैं. सीमित शब्दों में कवि भीतर के आक्रोश और आवेग को प्रकट किया है. यहां कवि का पाठक से अलहदा संवाद चलता रहता है. इनमें निरर्थक भावुकता के बजाय विचारों का सघन आवेश है जो पाठक के दिलो-दिमाग को छू जाता है.

बंद दरवाजों के पीछे
कृष्णा श्रीवास्तव

स्वाति अकादमी, बी-5/263, यमुना विहार, दिल्ली-53 मूल्य- 300

लेखिका के इस आठवें कहानी संग्रह में 18 कहानियां संकलित हैं. मानवीय संबंधों की ऊहापोह, लालच और संघर्ष को व्यक्त करती इन कहानियों में जहां एक ओर अदम्य जीवटता और इच्छाशक्ति का दर्शन होता है, वहीं तनाव, अवसाद और निराशा में डूबे चरित्रों की जीवन-कथा भी है. नारी जीवन की व्यथा उसके कर्तव्यों के बोझ और मनोबल को यहां महसूसा जा सकता है.

प्रज्ञा प्रवाह

मुरली मनोहर जोशी

भारत नीति प्रतिष्ठान,
डी-51, हौज खास,
नई दिल्ली-16 मूल्य-150

भारतीय पौराणिक महापुरुषों अष्टावक्र, नचिकेता, श्रीगणेश तथा नागार्जुन, हेडगेवार, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, पंडित दीनदयाल जैसे स्वतंत्रता सेनानी और भविष्य दृष्टा महानुभावों की दृष्टि व विचार से इस पुस्तक को पढ़कर परिचित हुआ जा सकता है. संपादक भानु प्रसाद शुक्ल ने दो अध्यायों में, भारत में खगोल विज्ञान तथा प्राचीनतम कालगणना की आधुनिकता और वैज्ञानिकता को दर्शाने का प्रयास किया गया है.

छिन्नमस्ता नहीं मैं

चित्रा मुद्गल

यश पब्लिकेशंस, 1/10753,
सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-32 मूल्य -175

यह पुस्तक स्त्रियों के अखबार वुमन भास्कर में लेखिका द्वारा 'शख्सियत' नाम से लिखित स्तंभ-लेखों तथा अन्य प्रकाशित लेखों का संकलन है. आधी आबादी को प्रकृति से प्राप्त शारीरिक विशिष्टताओं और समाज द्वारा दी जाने वाली यंत्रणाओं को लेखिका ने गहन वैचारिक विमर्श के रूप में इन लेखों में उभारा है. साथ ही नारी समाज की स्थिति और भविष्य की अपेक्षाओं को स्वर देते हुए, बदलाव की आंधी को बल भी दिया है.
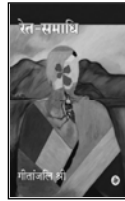
रेत समाधि

गीतांजलि श्री

राजकमल प्रकाशन 1-बी,
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज,
नयी दिल्ली-02. मूल्य-200

इस उपन्यास का शिल्प बनी-बनायी लीक को अनावश्यक करता एक सरल प्रवाह में बहता है. इसका फॉर्म कहानी और पात्र के परे है, घटनाओं और संवाद के परे है. पात्र अगर हैं तो अपनी सांकेतिक उपस्थिति में, घटनायें संदर्भ के तौर पर, संवाद हैं तो एकालाप के रूप में. छोटी रोज़मर्रा की घटनाओं और अनूठे बिंब की उंगली पकड़ मन के बीहड़ गहरे अतल में उतर जाने की कथा है.

सूटकेस में जिंदगी

हेमंत द्विवेदी

लोकभारती प्रकाशन, 1-बी,
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज,
नयी दिल्ली-02. मूल्य - 225

इस यात्रा संस्मरण में जीवन के छोटे-बड़े पड़ावों, स्थानों और वस्तुओं के साथ ही, गांव-कस्बे, छोटे-छोटे शहर भी आत्मीयता से मौजूद हैं. यहां लखनऊ, इलाहाबाद, काशी, अयोध्या, आगरा, ग्वालियर जैसे कई शहर हैं. इस यात्रा में जीवन-रूढ़ियां हैं, और घिसी-पिटी परम्पराओं की चोटें भी. आपबीती-जगबीती का यह वृत्तांत, हम सबका अपना वृत्तांत भी है. साथ ही हैं वे कठिन परिस्थितियां भी जिनसे हम सब घिरे हुए हैं.

भवन समाचार

स्वच्छता प्रशिक्षण

चंडीगढ़ केंद्र के विद्यालय के इंटरेक्शन क्लब ने गुरुद्वारा नाडा साहिब के पास स्थित समर्पण फाउंडेशन का दौरा किया. वंचितों की मदद करने के लिए स्कूल की चल रही सामाजिक पहल के एक हिस्से के रूप में, दो शिक्षकों के साथ तीस छात्रों ने स्वच्छता और शिक्षा के महत्व को समझाने का प्रयास किया. छात्रों को ठीक से हाथ धोने के तरीका सात चरण में दिखाया गया. स्कूल जाने वाले बच्चों को समर्पण और कड़ी मेहनत के साथ आगामी वार्षिक परीक्षाओं की तैयारी के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया गया. इन लोगों ने लगभग 200 बच्चों को साबुन, स्टेशनरी और बिस्कुट भी वितरित किये.

उदीयमान कलाकार

भवन विद्यालय, **पंचकूला केंद्र** के छात्र अपार खरे की कलाकृतियों को बाल भवन चंडीगढ़ में 15वें टीएफटी फेस्टिवल की विजुअल आर्ट प्रदर्शनी में प्रदर्शित किया गया. प्रकृति प्रेमी होने के कारण कक्षा आठ का यह छात्र जंगली पक्षियों और जानवरों का स्केच बनाने के लिए कलम और स्याही का उपयोग करता है. पद्मश्री बाबा योगेंद्र (संस्कार भारती के राष्ट्रीय संरक्षक) उन्हें आशीर्वाद देने के लिए वहां उपस्थित थे. चंडीगढ़ के प्रसिद्ध कलाकार रविंदर शर्मा ने इतनी कम उम्र में बच्चे द्वारा इस्तेमाल की गयी ड्राइंग तकनीक की प्रशंसा की.

मूल्य निर्माण शिविर

गांधी स्मृति और दर्शन समिति **हैदराबाद केंद्र** द्वारा नयी दिल्ली में आयोजित मूल्य निर्माण शिविर में बीवीबीवी, एनआईआरडी और पीआर, हैदराबाद के शिक्षकों और छात्रों की टीम ने भाग लिया. 72वें शहीद दिवस के इस मौके पर स्कूली बच्चों के साथ-साथ 500 अन्य प्रतिभागियों ने गांधीजी के सबसे पसंदीदा भजन गाये. यह आयोजन माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, श्रीमती तारा गांधी, उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू और पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, माननीय सांस्कृतिक मंत्री श्री प्रफुल्ल पटेल और अन्य गणमान्य लोगों की उपस्थिति में हुआ. इसका दूरदर्शन पर सीधा प्रसारण किया गया था.

शिक्षा मेला

'ईडीयूएनएक्सटी - द कैरियर नेक्स्ट', नामक कैरियर मेले का आयोजन भवन **कोलकाता केंद्र** के गंगाबक्स कनोरिया में किया गया. इस क्षेत्र में इस विद्यामंदिर द्वारा किया गया यह पहला प्रयास था. कोलकाता के कई स्कूलों को मेले में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया था जिसका उद्देश्य ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा के छात्रों को उनके कैरियर के बारे में बताना था. कई प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों और संस्थानों आईएएस, आईएम-यूईएम, ग्लोबल रीच, भवन प्रबंधन संस्थान और एएमआईटीवाय(एमिटी) कोलकाता ने स्टॉल लगाये और उनके द्वारा प्रस्तुत पाठ्यक्रमों पर प्रस्तुति की. छात्रों के साथ संवादात्मक सत्र अत्यधिक समृद्ध थे क्योंकि इसमें उन पाठ्यक्रमों के बारे में बताया गया जिन्हें वे आगे की पढ़ाई के लिए चुन सकते हैं.

ऐस स्पेलर्स

भवन की अंतर्राष्ट्रीय स्पेल बी प्रतियोगिता-- भारतीय शिक्षा विद्यालय (कुवैत), भवन के गिरधरदास मोहोता विद्या मंदिर (**हिंगणघाट केंद्र**) और भवन विद्या मंदिर (एलामकारा, कोची) में एक साथ आयोजित हुई. इस 'बीआईएसबी ग्रैंड फिनाले 2019-20' में कुवैत, अबू धाबी, अल ऐन, अजमान, बहरीन और भारत के प्रतिभागियों ने भाग लिया. मुख्य अतिथि श्री बसंत कुमार मोहोता (चेयरमैन, हिंगनघाट केंद्र), सम्मानित अतिथि श्री ब्रजरतन भट्टड़ (सचिव, हिंगणघाट केंद्र), श्रीमती प्रेमलता मोहोता (चेयरपर्सन एसएमसी हिंगणघाट), श्री सुनील कुमार मेनन (भवन इंटरनेशनल स्पेल बी के समन्वयक) और प्राचार्य डॉ. आशीष कुमार सरकार ने सबका आभार माना. प्रतियोगिता का कुवैत, भारत, अबू धाबी, अजमान, अल ऐन और बहरीन से सीधा आयोजन किया गया था. भवन के जीवीएम हिंगणघाट की कुमारी ख़ुशी चितलंगे ने हनीबी श्रेणी में दूसरा स्थान और भवन के जीवीएम हिंगणघाट की मिस सारा संघवी ने तीसरा स्थान प्राप्त किया.

शांति, प्रेम और सद्भाव

सुश्री मैरी थेरेस हेंडरसन (स्कॉटलैंड की संगीत निर्देशक और संगीतकार), और सोफिया यूनिवर्सिटी इंस्टीट्यूट, लोपियानो (इटली) के डॉ. डेक्लान ओ'बर्ने (थियोलॉजी प्रोफ़ेसर) ने 'पीस, लव, हार्मनी और विश्व धर्म' विषय पर प्रोफेसर एस.ए. उपाध्याय, (निदेशक, भवन के स्नातकोत्तर और अनुसंधान विभाग) के साथ उनके निवास स्थान पर मुलाकात की. दोनों फॉकेलोर मूवमेंट, रोम, इटली (एकता और सार्वभौमिक भाईचारे को बढ़ावा देने वाला एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन) के एक सक्रिय सदस्य हैं. इस अवसर पर उनके साथ इतालवी वाणिज्य दूतावास, मुंबई के सदस्य भी थे. आगंतुकों ने भारतीय विद्या भवन के शैक्षिक, सांस्कृतिक, सामाजिक गतिविधियों और प्रकाशनों की सराहना की.

अद्वितीय मान्यता

पथनमथित्ता केंद्र के सचिव, श्री पीआई शेरिफ मोहम्मद (रामकृष्ण मठ, पथनमथित्ता के अध्यक्ष) को रामकृष्ण मिशन, भुवनेश्वर, उड़ीसा के शताब्दी समारोह को सम्बोधित करने के लिए आमंत्रित किया गया. सप्ताह भर चलने वाले इस उत्सव का उद्घाटन उड़ीसा के मुख्यमंत्री श्री नवीन पटनायक ने किया और अशोक चंद्र पांडा ने इसमें भाग लिया. राज्यमंत्री और केंद्रीय मंत्री श्री प्रताप चंद्र सारंगी और रामकृष्ण मिशन के लगभग 200 भिक्षु और भारत तथा विदेशों से आए बड़ी संख्या में दर्शकों ने इसमें भाग लिया. श्री शेरीफ को उनकी शानदार सेवा के लिए पोन्नदा से सम्मानित दिया गया. उन्होंने आर.के. मिशन, त्रिशूर और रामकृष्ण विवेकानंद मिशन, तिरुवल्ला के विवेकानंद जयंती समारोह तथा आर.के. मिशन, पूनकुन्नम की 75वीं वर्षगांठ के उत्सव उद्घाटन भी किया.

विद्या तिलक पुरस्कार - 2020

भारतीय विद्या भवन के प्राचार्य सुनील चाको (वाटियोरकोरवु **तिरुवनंतपुरम केंद्र**) को शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए 18वें राष्ट्रीय प्रवासी भारतीय दिवस समारोह में प्रवासी भारतीय (केरल) को 'विद्या तिलक पुरस्कार-2020' से सम्मानित किया.

लॉकडाउन ने बहुत कुछ बदल दिया

कोरोना को लेकर चिकित्सा विज्ञान जहां उसका निदान खोजने में जुटा है वहीं सरकारें अपने लोगों को बचाने में. ऐसे में साहित्य जगत अपने ढंग से पाठकों के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभा रहा है. कोरोना वायरस की महामारी से बचने के लिए लागू लॉकडाउन ने बहुत कुछ बदल दिया है, यह बदलाव निरंतर जारी है. बदलाव की एक धार साहित्य में देखने को मिल रही है. किताबों को लेकर लोगों में रूचि बढ़ी है. इसका कारण यह भी हो सकता है कि भागती-दौड़ती ज़िन्दगी में अचानक से आए इस ठहराव में किताबें सच्ची साथी बनकर उभरी हैं. ऐसा ही कुछ डिजिटल दुनिया में देखने को मिल रहा है.

डिजिटल वाकई आने वाला कल है, जिसकी केवल सूचना व संचार की ही नहीं शब्दों की दुनिया में भी अपनी धमक है. इसने दूर रहकर लोगों को पास कर दिया है. दूरी फिज़िकल हैं लेकिन अहसास और प्यार कत्तई दूर नहीं. फेसबुक लाइव हो या यूट्युब लाइव इसके जरिए लेखक, पाठकों से सीधे जुड़ रहे हैं. उनसे बातें कर रहे हैं. उनके सवालों का जवाब दे रहे हैं. उन्हें अपनी रचनाएं पढ़कर सुना रहे हैं.

इसीलिए इंडिया टुडे और आज तक समूह के साहित्य के लिए समर्पित डिजिटल चैनल 'साहित्य तक' ने 'कोरोना और किताबें' की एक शृंखला शुरू की है, जिसके तहत देश के कई नामीगिरामी लेखक खुद की पुस्तक या फिर अपनी किसी पसंदीदा पाठक की पुस्तक का अंश, कहानी, या कविता पाठ पढ़ रहे हैं. 'साहित्य तक' अपने सभी डिजिटल मंचों; फेस बुक, युट्युब और 'तक एप' पर इनका प्रसारण कर रहा है.

देश के कई बड़े प्रकाशन भी इस दिशा में काफी कुछ कर रहे हैं. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास जहां कोरोना पर शोध आधारित किताबें लिखवा रहा है, वहीं वेस्टलैंड, एका, हिंदयुग्म और पेंग्विन जैसे प्रकाशक ई-पुस्तकों की बिक्री पर जोर दे रहे हैं. वाणी प्रकाशन ने ऑनलाइन साहित्य महोत्सव २०२० के नाम से एक लाइव कार्यक्रम शुरू किया है. इसी तरह राजकमल प्रकाशन समूह फेसबुक लाइव कर रहा है. प्रकाशकों का कहना है कि देश नहीं, विदेश से भी लोग डिजिटल माध्यम से शब्दों के और करीब आ गए हैं.

'बिहार की लोककथाएं' का लोकार्पण

नयी दिल्ली स्थित अकैडमी आफ फाइन आर्ट्स एंड लिटरेचर के म्यूजियम हॉल में डायलॉग कार्यक्रम के अंतर्गत पुस्तक लोकार्पण और परिचर्चा का आयोजन किया गया. इस अवसर पर राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से प्रकाशित रणविजय राव द्वारा संकलित और संपादित 'बिहार की लोककथाएं' पुस्तक का लोकार्पण किया गया. कार्यक्रम की अध्यक्षता आलोचक मैनेजर पांडेय ने की. मुख्य अतिथि थे संपादक प्रेम जनमेजय. विशिष्ट अतिथि के रूप में कुमार मणि उपस्थित थे. सान्निध्य मिथिलेश श्रीवास्तव का रहा. स्वागत वक्तव्य दिया दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक अरविंद मिश्रा ने. विशिष्ट वक्ताओं में कमला कौशिक, राकेश रेणु और रेणुका अस्थाना ने अपनी बात रखी. संचालन जापान में हिंदी पढ़ा रहे और अवकाश पर भारत आए वेद प्रकाश सिंह ने किया. इस अवसर पर उन्होंने कुछ जापानी लोककथाओं का भी उल्लेख किया. धन्यवाद ज्ञापन अंशु चौधरी ने किया. कार्यक्रम में दिल्ली विश्वविद्यालय और जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के कई शिक्षक और छात्रों सहित अन्य कई साहित्य प्रेमी उपस्थित थे.

कविता का वसंत

इंदौर में 'आपले वाचनालय' ने प्रतिभाशाली युवा कवि निशांत के स्वागत में कविता का वसंत कार्यक्रम का आयोजन किया. इस सम्मान काव्य गोष्ठी के पूर्व निशांत को उनके साहित्यिक अवदान के लिए संस्था द्वारा सम्मानित किया गया. इस वासंतिक काव्य गोष्ठी में अज़ीज़ अंसारी, मुकेश इंदोरी और प्रदीप कांत ने जहां अपनी गज़लों से समां बांधा वहीं सदाशिव कौतुक की पहाड़, वसंत पर शिव चंद्रायण, श्रीति राशिनकर निर्भया पर अरुणा खरगोणकर तथा प्रदीप मिश्र, अरुण ठाकरे और संस्था के संस्थापक संदीप राशिनकर ने अपनी कविताओं से श्रोताओं को प्रभावित किया. प्रदीप नविन की हास्य सरस्वती वंदना ने गुदगुदाया वहीं हरेराम वाजपेयी के गीत ने श्रोताओं को आल्हादित किया. कार्यक्रम की शुरूआत मनोहर शहाने द्वारा सरस्वती वंदना से हुई. अतिथियों का स्वागत दीपक देशपांडे, चंद्रायण व संदीप ने और संचालन किया श्रीति राशिनकर ने.

बोधकथा

धूप आने दो

कहते हैं जब सिकंदर भारत आया तो तो एक संन्यासी का बड़ा नाम सुनकर उनके दर्शन के लिए गया. संन्यासी की बातों से प्रभावित होकर सिकंदर ने उन्हें अपने देश ले जाने का प्रस्ताव रखा.

सिकंदर के प्रस्ताव को संन्यासी ने सिरे से खारिज कर दिया.

सिकंदर को इसकी अपेक्षा नहीं थी. वह किसी भी कीमत पर उन्हें ले जाना चाहता था. उसने पूछा, 'आपको मुझसे कुछ चाहिए तो बताएं. मैं सक्षम हूं. अवश्य आपकी इच्छा पूरी करूंगा'

संन्यासी ने सिकंदर की ओर देखा और फिर जैसे उसकी बात सुनी ही नहीं हो, इस भाव से बोले, 'फिलहाल तो तुम ज़रा एक तरफ हो जाओ, तुम मेरी ओर आने वाली धूप में बाधक बन रहे हो.'

सिकंदर चुपचाप नतमस्तक होकर वहां से चला गया.

भवन्स
नवनीत

अगला अंक

कोरोना-संकट ने हमारे
इतिहास और भूगोल
दोनों को झकझोर दिया है

हवा में आये बदलाव ने
पर्यावरण के संकट
को फिर गहरा दिया है

पर्यावरण दिवस के
संदर्भ में 'नवनीत' का
महत्वपूर्ण आयोजन

सवाल अस्तित्व का

साथ में
वह सब जो 'नवनीत' को
आपके लिए ज़रूरी बनाता है.

जून 2020

Printed and Published by P.V. Sankarankutty on behalf of Bharatiya Vidya Bhavan, printed at Maoolee Prints & Arts, Gala No. 9/A, Ground Floor, Byculla Service Industrial Estate, D.K. Cross Road, Byculla (East), Mumbai - 400 027 and published for Bharatiya Vidya Bhavan, Plot No. 33/35, Gr. + 4 Floor, K.M. Munshi Marg, Chowpatty, Mumbai - 400 007. **Editor : Vishwanath Sachdev**